सितंबर 2020

वर्ष 84 । अंक 9 । ₹-18 प्रति । ₹-220 वार्षिक

अखण्ड ज्योति

www.awgp.org

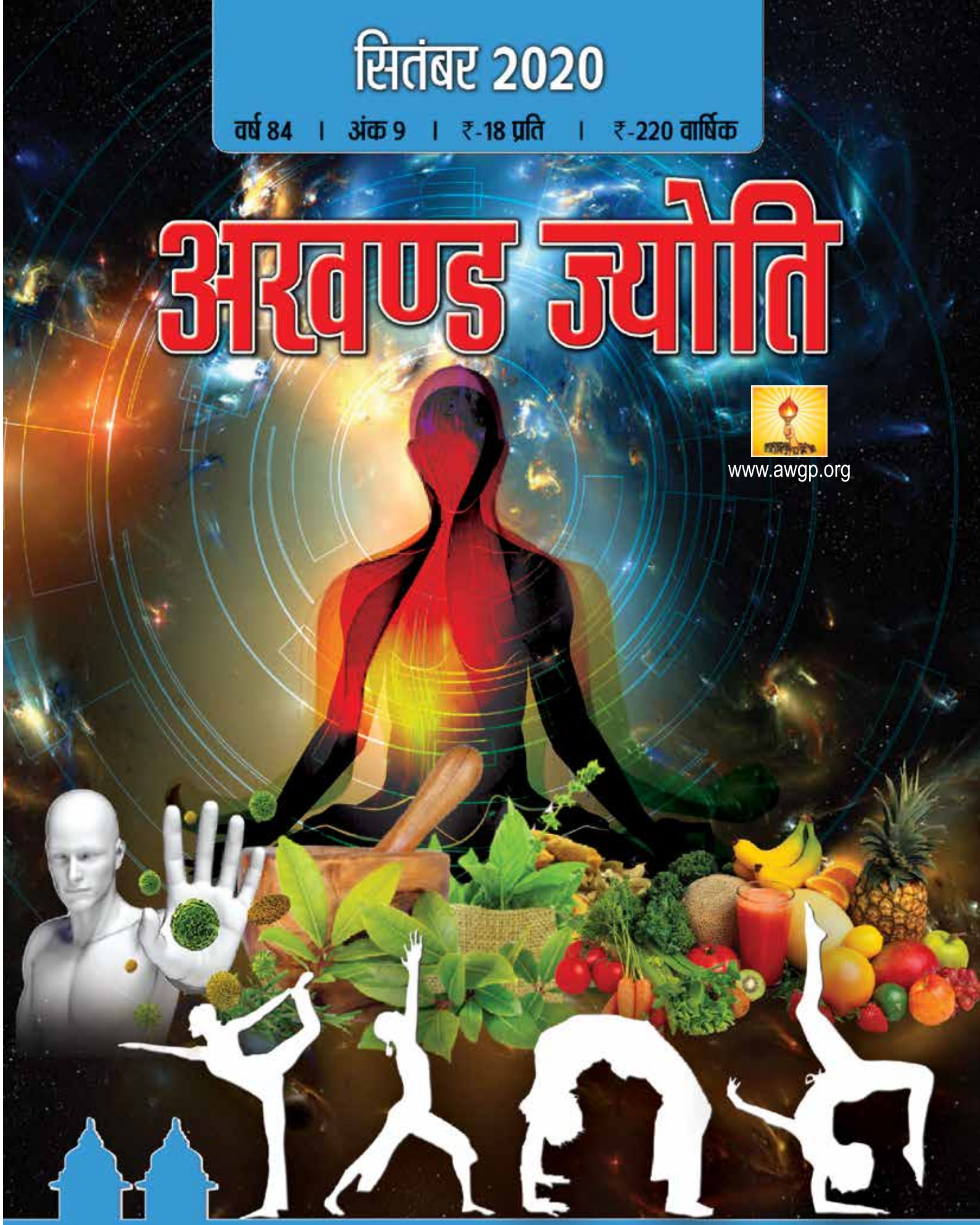

13 कार्य करने में ढूँढें आनन्द

26 तनाव प्रबंधन का सुगम मार्ग

35 असाधारण है ये पतझड़

49 दिशा माँगती युवा पीढ़ी

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा। शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः।।

भावार्थ - प्रेरणा देनेवाले, सूचना देनेवाले, सत्य का मार्ग प्रशस्त करने वाले, सन्मार्ग दिखानेवाले, शिक्षा देने वाले और आत्मबोध कराने वाले - इन समस्त विशेषताओं से युक्त व्यक्तित्व ही सच्चा गुरु है।

संस्थापक- संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी,मथुरा
दूरभाष नं. (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल न. 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं. (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 84 । अंक : 09
सितम्बर-2020
भाद्रपद-आश्विन : 2077
प्रकाशन तिथि : 01.09.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/- ₹
विदेश में : 1600/- ₹
आजीवन (बीस वर्षीय)
भारत में : 5000/- ₹

आंतरिक रूपान्तरण

मानवीय चिंतन में बसी गहरी से गहरी भ्रांतियों में एक भ्रांति यह भी है कि संसार से पलायन का नाम संन्यास है। जो सत्य भाग करके, पलायन करके प्राप्त होता है-वह सत्य नहीं हो सकता। वह सत्य का धोखा जरूर दिला सकता है, सत्य का छद्म आभास जरूर करा सकता है-सत्य नहीं हो सकता। जो संसार को छोड़ने का यत्न करता है-वह एक तरह से यह घोषणा करता है कि हमें परमात्मा पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं क्योंकि आखिरकार ये संसार भी तो परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है।

इस भ्रांति ने भारतीय समाज को और उसके विकास को भारी चोट पहुँचायी है। संसार से पलायन को हमने अध्यात्म समझ लिया जबकि परमात्मा की इसी अभिव्यक्ति में, जिसका नाम संसार है-इसमें, निस्पृह भाव से रहते हुए, निष्काम भाव से लोकमंगल के कार्य करते रहने में सच्चा संन्यास भी निहित है और सामाजिक उत्थान भी। इसी को स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने हाथ में तेल लगा कर कटहल काटने जैसा कहा तो शास्त्रों ने 'कमल पत्रवत्' की संज्ञा दे डाली। जो कवि को स्वीकारते हैं वे उसकी कविता को भी अंगीकार करते हैं, वैसे ही परमात्मा को स्वीकारने वाले इस संसार के अणु-अणु में उसकी उपस्थिति को स्वीकारते हैं। जब सर्वत्र परमात्मा ही व्याप्त है तो उनसे पलायन कैसे संभव है?

जीवन की समस्याओं का समाधान उनसे भागने में नहीं, उनसे हो कर गुजरने में है। शुतुरमुर्ग के आँख बंद कर लेने से सामने खड़ी आपदा विदा नहीं हो जाती, मात्र दिखना बंद हो जाती है। वैसे ही कामनाओं-वासनाओं से मुंह छिपा लेने से वे हमारे चिंतन से विदा नहीं हो जातीं। जब तक वैचारिक दृष्टि से, मन से व्यक्ति बंधनमुक्त नहीं होता, कोई संन्यास सफल नहीं होता इसलिए प्रयत्न मन के, वासनाओं के, कर्मों के, संस्कारों के बंधनों को खोलने के लिए करना चाहिए, बाह्य व्यवस्था को बदलने के लिए। जब तक आंतरिक रूपांतरण न हो-कोई संन्यास सफल नहीं हो सकता।

• • •

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

विषय सूची

- आन्तरिक रूपान्तरण 3
- विशिष्ट सामयिक चिन्तन

  निरंतर बढ़ती जनसंख्या 5
- ध्यान में प्रवेश की प्राथमिक तैयारियाँ 7
- निर्मल मन जन सो मोहि पावा 9
- पर्व विशेष

  गुरुसत्ता का प्यार 11
- कार्य करने में ढूँढें आनंद 13
- विकास के सुदृढ़ आधार 15
- सपनों की दुनिया 17
- तुलसीदास जी के साहित्य में नारी पात्र 20
- तप साधना से होती है समाधि की प्राप्ति 22
- अस्वास्थ्यकर है बोतलबंद पानी 24
- तनाव प्रबंधन का सुगम मार्ग 26
- धुंधकारी प्रेत की मुक्तिगाथा 28
- मन की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाऐं 31
- जीवनमूल्यों पर संकट एवं शिक्षण संस्थानों की भूमिका 33
- असाधारण है ये पतझड़ 35
- चेतना की शिखर यात्रा-216

  राजनीति से हटकर 38
- जलवायु परिवर्तन और आर्थिक विकास 41
- धर्म और विज्ञान का समन्वय एवं वैज्ञानिक अध्यात्म 43
- ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार-137

  मनोयौगिक अंतःक्षेपों का अध्ययन 45
- साधनों से नहीं, साधना से मिलता है शाश्वत सुख 47
- दिशा खोजती युवा पीढ़ी 49
- युग गीता-244

  दंभी, अभिमानी, क्रोधी व कठोर होते हैं आसुरी व्यक्तित्व .. 51
- अजूबे पेड़ों का संसार 53
- आडंबर त्याग सच्चाई अपनाऐं 55
- परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-2

  अध्यात्म- अंतरंग का परिष्कार 57
- विश्वविद्यालय परिसर से-183

  विपरीत परिस्थितियों में नूतन संदेश पहुँचाता विश्वविद्यालय 62
- अपनों से अपनी बात

  लोकसेवियों के निमित्त महानता का पथ 63
- कविता

  66

आवरण पृष्ठ परिचय- ----------

सितम्बर 2020 व अक्टूबर 2020 के पर्व-त्यौहार

मंगलवार	01 सितबर	पूर्णिमा/ महालयारंभ	रविवार	27 सितबर	कमला एकादशी
बुधवार	02 सितबर	परम वंदनीया माताजी - महाप्रयाण दिवस	शुक्रवार	02 अक्टूबर	गांधी, शास्त्री जयंती
रविवार	06 सितबर	माता भगवती देवी शर्मा जयंती	मंगलवार	13 अक्टूबर	कमला एकादशी
गुरुवार	10 सितबर	जीवत्पुत्रिका व्रत	शनिवार	17 अक्टूबर	नवरात्रारंभ
शुक्रवार	11 सितबर	मातृ नवमी	रविवार	25 अक्टूबर	विजयादशमी
रविवार	13 सितबर	इन्दिरा एकादशी	मंगलवार	27 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
मंगलवार	15 सितबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती	शुक्रवार	30 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा
गुरुवार	17 सितबर	विश्वकर्मा जयंती/ पितृमोक्ष	शनिवार	31 अक्टूबर	बाल्मीकि जयंती

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। - संपादक

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

निरंतर बढ़ती जनसंया

वर्तमान समय में देश की सबसे बड़ी समस्याओं में एक है- जनसंया विस्फोट। वैज्ञानिकों का कहना है कि मानव सयता की उत्पत्ति को लगभग 1 लाख 30 हजार साल से लेकर 1 लाख 60 हजार साल हो चुके हैं। हमें डेढ़ लाख साल लगे दुनिया की जनसंया को 100 करोड़ पहुँचाने में। सन् 1804 में दुनिया की आबादी ने पहली बार 100 करोड़ के आँकड़े को छुआ। अगले 123 साल में मतलब सन् 1927 में दुनिया की आबादी बढ़कर 200 करोड़ हो गई। फिर भी इंसान को समझ नहीं आया कि वो किस दिशा में बढ़ रहा है।

सन् 1960 में 33 वर्ष बीतने के बाद इंसान ने अपनी आबादी को 300 करोड़ तक पहुँचा दिया। तब तक अनेकों ऐसे वैश्विक संगठन बन चुके थे और कुछ लोगों को यह एहसास होना शुरू हो चुका था कि अधिक जनसंया ही मानव सयता के पतन का कारण बन सकती है। तभी सन् 1952 में आजादी के एकदम बाद भारत ने दुनिया की सबसे पहली परिवार नियोजन योजना की शुरूआत की। उस समय भारत की आबादी थी लगभग 36 करोड़ लेकिन उससे भी बढ़ती आबादी पर कोई फर्क नहीं पड़ा।

11 जुलाई 1987 को दुनिया में 500 करोड़वें बच्चे ने जन्म लिया। तब यूनाईटेड नेशन्स को भी यह चिंता गहराने लगी और 36 सदस्यों वाले एक संगठन यूनाईटेड नेशन्स पॉपुलेशन फंड या यूएनएफपीए का गठन किया गया, जिसे दुनिया में जनसंया के विषय में काम करना था, क्योंकि 11 जुलाई 1987 को दुनिया की आबादी 500 करोड़ पहुँची थी, इसलिए सन् 1989 से 11 जुलाई को विश्व जनसंया दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। फिर भी आबादी का कारवाँ रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था और सन् 1960 के 300 करोड़ आँकड़े को हमने अगले 39 वर्षों में 1999 में बढ़ा कर 600 करोड़ कर दिया। 1999 को अभी सिर्फ 20 वर्ष ही बीते हैं, लेकिन तब भी दुनिया की आबादी लगभग 770 करोड़ के आसपास पहुँच चुकी है।

आबादी के बढ़ते आँकड़ों को देखें तो इसमें भारत का बहुत बड़ा योगदान है। जिस देश ने दुनिया में सबसे पहले परिवार नियोजन योजना प्रारंभ की आज वो सरकारी आँकड़ों के अनुसार दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश बनने के कगार पर है। दुनिया की 2.4 प्रतिशत भूमि पर भारत में दुनिया की लगभग 18 प्रतिशत आबादी रहती है और भारत के पास अपनी इस आबादी को पिलाने के लिए सिर्फ दुनिया का 4 प्रतिशत पानी ही है। आजादी के बाद से हम लगभग 100 करोड़ बढ़ चुके हैं।

कितनी चिंताजनक बात है कि आजादी के बाद से भारत में तीन गुना आबादी बढ़ चुकी है और सन् 1947 की तुलना में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 5177 क्यूबिक लीटर से लगभग तीन गुना घटकर 1545 क्यूबिक लीटर हो गई है। जिस देश में कभी दूध की नदियाँ बहती थीं, आज वह पानी की नदियों के लिए भी तरस रहा है। बढ़ती आबादी के लिए भोजन की चिंता के कारण हमारे देश में ग्रीन रिवोल्यूशन, ऑपरेशन फूड जैसी अनेकों योजनायें चलाई गईं। आजादी के बाद से रासायनिक खादों का प्रयोग लगभग 80 गुना बढ़ गया और अनाज उत्पादन लगभग 5 गुना बढ़ा और साथ में बीमारियाँ भी बढ़ गयीं।

जिस देश में विश्व के पहले दो विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, वहाँ आज दुनिया के उच्चतम 250 विश्वविद्यालयों में उस देश का एक भी विश्वविद्यालय नहीं है। टैक्सपेयर्स के जिन पैसों को देश की प्रगति में लगना था, अभी उनसे हम शौचालय और गैस के कनेक्शन देने में ही लगे हैं, जबकि आज से लगभग 38 वर्ष पहले भारत और चीन की प्रति व्यक्ति आय और अर्थव्यवस्था लगभग एक बराबर थी लेकिन चीन ने अपनी बढ़ती आबादी को रोककर अपने संसाधनों को शोध, तकनीकी, रक्षा, रोजगार सृजन आदि के क्षेत्रों में लगाया और आज हम चीन की अर्थव्यवस्था के सामने कहीं पर भी नहीं ठहरते हैं।

सन् 1961 में हुए पहले बीपीएल सर्वे के अनुसार भारत में तब 19 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे थे, जो कि सन् 2011 के सर्वे में बढ़कर 36 करोड़ हो गये। यूनाईटेड नेशन्स के अनुसार भारत में आज 50 करोड़ से भी अधिक लोग गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करते हैं। अगले 35 वर्षों में युवा जनसंया अधिक होने के कारण भारत की आबादी लगभग 200 करोड़ होगी। जब दुनिया दूसरे ग्रहों की खोज करने में लगी होगी तब हम अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए शौचालय और घर बनवा रहे होंगे।

आज ऐसा समय आ गया है जब प्रदूषण के कारण स्कूलों की छुट्टी की जा रही है। नीति आयोग के अनुसार देश के बड़े 20 शहरों में कुछ साल बाद पानी समाप्त हो जायेगा। जंगलों को हम काटते जा रहे हैं और इसीलिए जंगली जानवरों ने आबादी में आना शुरू कर दिया है और अब हम उन्हें मार रहे हैं। जानवरों की आबादी को कम करने के लिए हमने कहीं नीलगायों को मारा, कहीं जंगली सुअर को मारा तो कहीं पर बंदरों को मारा जा रहा है, लेकिन इंसान जो कि अपनी आबादी बढ़ाकर जंगलों को विकास के नाम पर काटने में लगा है उसे मारने का आदेश कौन देगा?

सन् 1974 से आज तक टैक्सपेयर्स के लगभग 2.25 लाख करोड़ रुपये परिवार नियोजन योजनाओं पर खर्च किये जा चुके हैं, लेकिन यदि इस रकम का आंकलन हम आज के हिसाब से करेंगे तो यह 20 लाख करोड़ से भी अधिक बैठेगी। शायद टैक्सपेयर्स के पैसों का इससे बड़ा दुरुपयोग आज तक नहीं हुआ है। इतनी बड़ी रकम खर्च करके हमने क्या पाया है? शायद 100 करोड़ की जनसंया वृद्धि और फिर भी उस पर तर्क करने के लिए अनेकों लोग तैयार हो जाते हैं।

सन् 2000 में भारत में 100 करोड़वें बच्चे ने जन्म लिया और आज वो बच्ची बालिग हो चुकी है। जिस देश में हर साल सरकारी आँकड़ों के अनुसार लगभग 1.5 करोड़ आबादी बढ़ती है, पिछले 18 वर्षों में उसी देश में 36 करोड़ आबादी बढ़ चुकी है अर्थात् 2 करोड़ प्रतिवर्ष। अब कौन सही है, सरकारी आँकड़े या वास्तविकता- समझ नहीं आता। इस पर भी हम कहते हैं कि देश में प्रजनन दर अब कम हो रही है। सरकार को सही तथ्य को देश को समझाने की जरूरत है।

भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण की वेबसाइट के अनुसार अभी तक हमारे देश में 121,70,94,786 आधार कार्ड बन चुके हैं। प्राधिकरण के अनुसार 18 वर्ष तक की आयु के नागरिकों के अभी 14,34,55,413 आधार कार्ड बनने बाकी हैं। वहीं प्राधिकरण के अनुसार 18 वर्ष से अधिक आयु के कुल 84,43,26,760 आधार कार्ड बनने हैं लेकिन अब तक 86,92,66,410 आधार कार्ड बन चुके हैं और अभी 11 प्रतिशत और बनने बाकी हैं। इससे देश समझ सकता है कि जनसंया को लेकर आँकड़ों में हमारे देश में कितना विरोधाभास है।

कुछ माह पूर्व आयी चीन की एक रिपोर्ट के अनुसार चीन ने दावा किया है कि दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश चीन नहीं अब भारत है। भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण की वेबसाइट भी चीन के इसी दावे को और पुष्ट करती है। भारत जनसंया विस्फोट के कगार पर है और प्रशासन को कोई चिंता ही नहीं है। अब भारत को जनसंया नियंत्रण के नये मार्गों के विषय में सोचना होगा अन्यथा विश्व की दृष्टि में भारत गरीबों और मजदूरों की राजधानी बनकर रह जायेगा। अब यह इस देश के आम नागिरकों को सोचना है कि अपने बच्चों को क्या बनाना चाहते हैं। समझ नहीं आता कि अब हम किसको महान कहें, भारतीय इतिहास को या आने वाले भविष्य को। जो भी हो जनसंया की उस बाढ़ को रोकने की आश्यकता है अन्यथा इस बाढ़ की चपेट में सब कुछ नष्ट हो जाएगा।

• • •

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते। आचारेण तु संयुक्तः सपूर्णफलभाग्भवेत्॥
अर्थात् जो सदाचार का त्याग कर देता है, वह वेदों का फल प्राप्त नहीं करता परंतु जो अपना जीवन वेदानुसार सदाचारी बना लेता है- वह संपूर्ण फलों को प्राप्त करने वाला होता है।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

ध्यान में प्रवेश की प्राथमिक तैयारियाँ

ध्यान की महिमा सर्वविदित है। ध्यान को मन का आसन कहा गया है। स्वामी विवेकानन्द जैसे ध्यानसिद्ध महायोगी ध्यान को आध्यात्मिक जीवन की कुंजी कहा करते थे। परमपूज्य गुरुदेव ध्यान को जीवन साधना का अभिन्न अंग कहते रहे। ध्यान का इतना गुणगान सुनते हुए व्यक्ति ध्यान के लिए बैठता है, लेकिन ध्यान है कि लगता नहीं। मन में सामान्य स्थिति से भी अधिक उछल-कूद शुरु हो जाती है और ध्यान का पूरा समय मन से युद्ध में बीत जाता है और जब व्यक्ति उठता है तो पहले से भी अधिक थका-हारा, अशांत, अस्थिर तथा किंकर्तव्यविमूढ़ होता है। ऐसे में प्रायः अधिकाँश लोगों को ध्यान दूर की कौड़ी लगता है और फिर वे इसको जीवन में एक सहज प्रक्रिया के रूप में स्थान नहीं दे पाते।

इसके विपरीत ध्यान तो वह कीमिया है, जो व्यक्ति को शांत, स्थिर एवं एकाग्र बनाता है लेकिन प्रारंभिक अवस्था में जब ध्यान के परिणाम इनके विपरीत अशांत, अस्थिर एवं विच्छृंखलित अवस्था के रूप में आते हैं, तो साधक इसमें रुचि खो बैठता है तथा उसे ध्यान एक पहेली सा लगने लगता है। इसके बारे में दी जा रही तमाम परिभाषाऐं, व्यायाऐं उसको बुद्धि से तो कुछ समझ आती हैं, लेकिन गले नहीं उतरती। ध्यान की भावातीत, मन को विचारों से खाली करने, व्यक्तित्व का कायाकल्प करने जैसी उच्चस्तरीय बातें उसे असभव सी लगती हैं। वस्तुतः यह सब ध्यान के बारे में सही जानकारी के अभाव में होता है। यदि ध्यान के स्वरूप, मन की प्रकृति एवं ध्यान में प्रवेश के पूर्व की तैयारियों का तनिक सा भी बोध होता तो फिर व्यक्ति धैर्य एवं समझ के साथ ध्यान की प्रक्रिया में भाग लेता एवं उसे जीवन का अभिन्न अंग बनाता।

पातंजलि योगपुत्र में ध्यान को समाधि के पूर्व की अवस्था बताया गया है अर्थात् यह एक तरह से समाधि का प्रवेश द्वार है। सामान्य बुद्धि से भी इतना तो समझा ही जा सकता है कि इस उच्चस्तरीय अवस्था तक सीधी पहुँच का प्रयास एक तरह की कुचेष्टा ही मानी जाएगी, कुछ ऐसे ही जैसे प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूल को पार किए बिना कोई सीधा पीएचडी कक्षा में प्रवेश करना चाह रहा हो, जिसे कोई भी एक मूर्खतापूर्ण अनाधिकार चेष्टा ही मानेगा। अतः ध्यान के इच्छुक साधकों को इसकी बौद्धिक समझ रखनी होगी तथा साथ ही ध्यान के माध्यम से मन की प्रकृति को समझना होगा।

मन की चंचलता विख्यात है। श्रीमद्भगवद्गीता में वीर अर्जुन जैसे योद्धा तक भगवान श्रीकृष्ण से मन के चंचल स्वभाव को साधने के पुत्र जानना चाहते हैं। वस्तुतः मन स्वयं में कुछ नहीं, वह तो जन्म-जन्म के संस्कारों को स्वयं में समाहित किए सतत परिवर्तनशील चित की लहरों का नाम है, जो एक पल शांत हो सकता है तो दूसरे ही पल उत्तुंग शिखरों जैसा विशाल एवं विकराल रूप धारण कर सकता है। इसको साधना संसार-सागर के ऊपर सेतु बनाने जैसा एक दुर्घर्ष एवं समयसाध्य कार्य है, जो किसी पारलौकिक पुरुषार्थ की अपेक्षा रखता है और ध्यान के माध्यम से यही महाकार्य सिद्ध होता है।

इस तरह ध्यान विशुद्ध रूप से एक आध्यात्मिक प्रयोग है, इसे सांसारिक प्रयोजन से जोड़ना एक भूल होगी। सांसारिक प्रयोजन में लगाए गए मन को अधिक से अधिक एकाग्रता कह सकते हैं, ध्यान नहीं। हालांकि बोलचाल की भाषा में कहा जाता है कि जरा ध्यान से सुनो भाई या तुहारा ध्यान किधर है, जो एक तरह से विषय के प्रति एकाग्रचित की अवस्था को इंगित कर रहा होता है, न कि उस ध्यान की ओर, जो व्यक्ति को आध्यात्मिक अनुभव की ओर ले जाता है, या जीवन को परम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले चित के परिष्कार की कुंजी बनता है।

यहाँ मन की त्रिगुणात्मक प्रकृति को समझ लेना भी अभीष्ट है। जब मन में तम और रजोगुण की प्रधानता रहती है, तो ऐसे पलों में ध्यान नहीं लगता। ऐसे में मन या तो जड़ता की अवस्था में होता है या फिर इच्छाओं, कामनाओं एवं वासनाओं की आँधी में

बह रहा होता है। जब रज एवं तम गुण शांत होते हैं व सत्वगुण प्रधान होता है तो यह अवस्था ध्यान के अनुकूल होती है- ऐसे में ध्यान साधक का स्वभाव प्रतीत होता है। अतः जब मन में तम व रज गुण की प्रधानता हो, तो ऐसे में ध्यान का कोई अधिक फल नहीं मिलता क्योंकि ऐसे में मन अपने आध्यात्मिक लक्ष्य के इतर अन्य विषयों की उधेड़बुन में उलझा होता है। यह एक तरह के समय की बर्बादी ही साबित होता है। इसकी बजाए इस समय को ध्यान की तैयारी के निमित्त लगाया जाए तो परिणाम बेहतर आएँगे एवं संतोषजनक होंगे। इस तैयारी में अपने कर्तव्य कर्म का पालन एवं श्रमनिष्ठ जीवन का अनुशीलन आधारभूत तत्व हैं।

कठोर श्रम के साथ धीरे-धीरे तन-मन की जड़ता टूटती है, कर्तव्य कर्म के साथ रजोगुण धीरे-धीरे शांत होता है। विदित हो कि तम एवं रज गुण की अवस्था में उठ रही चित्त की लहरों को दबाया नहीं जा सकता, न ही इनको सीधे रोका जा सकता है। इनको दिशा भर दी जा सकती है। इस दिशा देने का नाम ही ध्यान है, जिसका शुभारभ आध्यात्मिक अभिरुचि पैदा होने के साथ होता है। आध्यात्मिक आभा से दीप्त महापुरुषों का सत्संग एवं उनकी शिक्षाओं का स्वाध्याय व्यक्ति में आध्यात्मिक रुचि को पैदा करता है और भावनाओं का प्रवाह एक उच्चस्तरीय दिशा पाता है। इसके साथ अंतर्दृष्टि मिलती है, आस्तिकता का वह भाव जगता है, जिनके साथ ध्यान की गहराईयों में उतरना सरल हो जाता है।

इसी के साथ जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य स्पष्ट होने लगता है। आदर्शवादिता जीवन का अंग बनने लगती है। संयम, साधना एवं आत्म-अनुशासन के साथ मन की चंचलता शनैः-शनैः शांत होती जाती है तथा टिक कर बैठने की पात्रता विकसित होती है। इसके साथ निष्काम कर्म का महत्व कुछ-कुछ समझ आने लगता है तथा परमार्थपरायणता का जीवन में समावेश होने लगता है। इसी तरह आध्यात्मिक ग्रंथों का परायण, इसके सार सूत्रों पर चिंतन-मनन देखते-देखते ध्यान की गहराईयों के सोपान बन जाते हैं।

इस तरह एक बार आध्यात्मिक रुचि जाग्रत होने पर फिर ध्यान व्यक्ति के लिए कोई बोझिल कार्य नहीं रह जाता। वह उसे पूरे मनोयोग के साथ, पूरी समझ के साथ अपनाता है व इसकी गहराईयों में उतरता है। चित्त का परिष्कार सधने लगता है तथा चेतना के रहस्य एक-एक करके अनावृत्त होने लगते हैं। मार्ग के अवरोध उसे समझ आने लगते हैं व असीम धैर्य के साथ वह इनको पार करता है और क्रमशः ध्यान उसके जीवन की महायात्रा, अंतर्यात्रा, चेतना की शिखर यात्रा का माध्यम बन जाता है।

जब तक यह आध्यात्मिक रुचि नहीं पैदा होती, अपने इष्ट, आराध्य एवं गुरु के प्रति अनुराग नहीं जगता, तब तक ध्यान एक पहेली ही बना रहता है और इसके निमित्त किया गया पुरुषार्थ बर्बादी ही प्रतीत होता है। ध्यान की सही समझ ही साधना का मूल मंत्र है।

• • •

एक मिशनरी ने रामकृष्ण परमहंस से पूछा कि वे माता काली के रोम-रोम में अनेकों ब्रह्माण्ड होने की बातें करते हैं और उस छोटी सी मूर्ति को काली कहते हैं- यह कैसे? इस पर परमहंस ने पूछा- 'सूरज दुनिया से कितना बड़ा है?' उन्होंने उत्तर दिया-'नौ लाख गुना।' परमहंस ने फिर पूछा- 'तब वह इतना छोटा कैसे दिखाई देता है।?' मिशनरी ने कहा- 'नौ लाख गुना होने पर भी सूरज हमसे बहुत दूर है। इसलिए वह इतना छोटा दिखाई देता है।' परमहंस ने फिर पूछा- 'कितनी दूर?' उन्होंने बताया-'नौ करोड़ तीस लाख मील।' परमहंस ने विनम्रता से जवाब दिया- 'ठीक इसी प्रकार आप माँ काली से इतनी दूर हैं कि आपको वे छोटी दिखाई देती हैं। मैं उनकी गोद में हूँ। इसलिए मुझे वे बड़ी लगती हैं। आप स्थूल दृष्टि से पत्थर देखते हैं, मैं आस्था की दृष्टि से शक्तिपुंज देखता हूँ।'

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

निर्मल मन जन सो मोहि पावा

अविरल भक्ति के प्रतीक और ब्रह्मा के मानसपुत्र माने जाने वाले देवर्षि नारद लोककल्याण के उद्देश्य से विभिन्न लोकों में परिभ्रमण किया करते थे। उनके मार्गदर्शन को पाकर कोटिशः भक्तों ने अपनी अविरल भक्ति के माध्यम से अपने आराध्य को, भगवान को, जीवन के परम लक्ष्य को पाने में सफलता प्राप्त की। नारद जी के परामर्श से ही माता पार्वती ने भगवान शिव को पतिरूप में पाने के लिये कठोर तप किया और भगवान शिव को प्राप्त कर पायीं। नारद जी के कहने पर ही ध्रुव ने भगवान विष्णु को पाने के लिये कठोर तप किया और अंततः भगवान विष्णु का दिव्य दर्शन प्राप्त कर सके। नारद जी के कहने पर ही कयाधू ने भगवान का सुमिरन किया और भक्त प्रह्लाद जैसे पुत्र को जन्म दिया।

ऐसे अगणित दृष्टांत हमें विभिन्न शास्त्रपुराणों में देखने-सुनने को मिलते हैं। अपनी लोकोपकारी प्रवृत्ति और सद्गुणों के कारण ही नारद जी देवों और असुरों दोनों के बीच समान की दृष्टि से देखे जाते थे। निसंदेह नारद जी के यत्र-तत्र भ्रमण करने का मुय उद्देश्य प्रत्येक भक्त की पुकार भगवान तक पहुँचाना होता था। एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार नारद जी भ्रमण करते हुये कहीं जा रहे थे कि तभी उनकी नजर एक बरगद वृक्ष के नीचे बैठकर तप कर रहे एक ब्राह्मण पर पड़ी।

उस ब्राह्मण ने जब नारद जी को देखा तो बोला- 'हे नारद जी! आपका तो भगवान के पास आना-जाना होता है। इस बार जब आप भगवान के पास जायें तो आप भगवान से मेरे विषय में यह अवश्य पूछियेगा कि वे मुझे कब दर्शन देंगे?' ब्राह्मण ने कहा कि- मैं तो कई वर्षों से भगवान का सुमिरन कर रहा हूँ फिर भी भगवान ने मुझे दर्शन नहीं दिये? नारद जी ने कहा- 'ठीक है ब्राह्मणदेव। इस बार जब मैं भगवान से मिलूँगा तो मैं उनसे आपके बारे में अवश्य ही बताऊँगा।'

नारद जी वहाँ से चल पड़े और कुछ दूर जाकर देखा कि एक पीपल वृक्ष के नीचे एक मोची बैठा है और वह लोगों के जूते बनाने, सीने का काम कर रहा है। नारद जी कौतुहलवश वहाँ उतरे और उस मोची के पास पहुँचे। नारद जी को देखते ही वह मोची बहुत हर्षित हुआ और उसने उनकी आवभगत की। जब नारद जी वहाँ से जाने लगे तब उस मोची ने कहा- 'हे देवर्षि! मैं तो घर-गृहस्थी के कार्य में ही लगा रहता हूँ। मैं भगवान का सुमिरन बहुत नहीं कर पाता हूँ। इसका मुझे दुःख है और इससे तो मुझे यही लगता है कि इस बार का मेरा यह मानव जीवन व्यर्थ ही निकला जा रहा है, क्योंकि भगवान की प्राप्ति करना मुझ जैसे साधारणजनों के लिए कहाँ संभव है? यदि आपकी भगवान से भेंट हो तो आप उनसे यह जरूर पूछियेगा कि मुझ अकिंचन पर भी क्या भगवान की कभी कृपा हो सकेगी।'

नारदजी ने कहा- 'मैं तुहारा संदेश भगवान को अवश्य ही सुनाऊँगा। तत्पश्चात् नारद जी वहाँ से चल पड़े। नारदजी जब भगवान विष्णु के पास पहुँचे तो उन्होंने ब्राह्मण और मोची दोनों का संदेश भगवान को सुनाया। नारद जी की बातें सुनकर भगवान विष्णु बोले- 'नारद जी! आप दोनों के पास जाकर यह कह दीजियेगा कि वे दोनों जिस वृक्ष के नीचे बैठे हैं, उस वृक्ष में जितने पते हैं उतने वर्षों के बाद ही वे मेरे दर्शन प्राप्त कर सकेंगे।'

नारदजी ने दोनों के पास जाकर भगवान का संदेश सुनाया। नारदजी द्वारा भगवान का संदेश सुनते ही ब्राह्मण बड़ा उदास हो गया। उधर जब मोची ने वही संदेश पाया तब उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। कुछ दिनों के पश्चात् जब नारदजी फिर उसी मार्ग से गुजर रहे थे तब उन्होंने देखा कि उस वृक्ष के नीचे तप करने वाला ब्राह्मण अब वहाँ नहीं है और जब वे उस मोची के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि मोची बड़े ही हर्षित भाव से अपने कार्य में लगा है। नारद जी ने उससे पूछा कि- 'भला! तुहारे इस तरह आनंदित होने का क्या कारण है? तुहें तो भगवान भी अभी दर्शन देने वाले नहीं

हैं।' तब उस मोची ने कहा कि- 'हे देवर्षि! अभी कुछ देर पूर्व ही भक्तवत्सल भगवान ने मुझ अकिंचन को अपना दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया है। भगवान का दर्शन पाकर मेरा रोम-रोम पुलकित हुये जा रहा है।'

नारदजी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे पुनः भगवान विष्णु के पास पहुँचे और पूछा- 'भगवन! आपने तो कहा था कि उस ब्राह्मण और मोची को आप वर्षों बाद दर्शन देंगे पर आपने तो उस मोची को अभी ही दर्शन दे दिया और वह ब्राह्मण तो अब वहाँ तप भी नहीं कर रहा। आपने उन दोनों के साथ इस तरह के अलग-अलग बर्ताव क्यों किया?' भगवान विष्णु मुस्कुराये और बोले- 'नारद! वह ब्राह्मण निसंदेह वर्षों से तप कर रहा था पर उसके मन में अभी भी मेरे प्रति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास नहीं था। इसलिये जब आपने उसे बताया कि उसे मेरा दर्शन पाने में वर्षों लग जायेंगे तो वह उदास होकर मेरे प्रति विश्वास खो बैठा और तप का परित्याग कर दिया। वह तप को, भक्ति को बहुत ही बुझे हुये विश्वास के साथ, अनमने ढंग से किसी तरह से कर रहा था। उसकी भक्ति में गहराई नहीं थी पर जब आपने वहीं बातें मोची को बताईं तब वह निराश नहीं हुआ बल्कि यह सोचकर कि वर्षों बाद ही सही उसे भगवान के दर्शन तो होंगे और यह सुनकर मेरे प्रति उसका विश्वास और भी बढ़ गया। मुझ जैसे अकिंचन को प्रभु कभी दर्शन देंगे यह सोचकर ही वह आनंद के मारे नाचने लगा और मेरे प्रेम में इतना रोया कि उसके हृदय के सारे कषाय-कल्मष प्रेमाश्रु बनकर आँखों से बहने लगे। उसकी ऐसी प्रेमोन्मत भावदशा देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैं तत्काल ही उस भक्त से मिलने स्वयं चला गया। मैं स्वयं को उससे मिलने से नहीं रोक पाया।'

नारदजी समझ गये कि भगवान किसी के साथ भेद-भाव नहीं करते वरन् अपनी स्वयं की पात्रता के आधार पर ही व्यक्ति प्रभु को पाने में समर्थ होता है। प्रभु किसी की तप की अवधि और मालाओं की, जप की गणना देखकर नहीं बल्कि व्यक्ति के अंतस की निर्मलता, पावनता, पवित्रता को देखकर ही उसे अपनी कृपा से निहाल कर देते हैं। भगवान ने रामचरितमानस में ठीक ही कहा है-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

• • •

दुष्टिकोण का परिवर्तन ही सबसे बड़ा परिवर्तन है। अपनी सीमा के संकीर्ण दायरे को बढ़ाकर विशाल क्षेत्र तक विकसित करने का नाम ही विकास है। वासना और तृष्णा की क्षुद्रता की मोह निद्रा की उपेक्षा करते हुए कर्त्तव्यपालन और परमार्थ की आकांक्षाएँ जाग्रत करना ही आत्मजागरण है। कुविचारों और दुर्भावनाओं के काम, क्रोध, लोभ, मोह के बन्धनों को तोड़ डालना- इसी का नाम मुक्ति है। सन्तोष, संयम और सच्चाई, सज्जनता और शान्ति की संतुलित मनोभूमि बनाये रखना ही स्वर्ग है। यह अपनी धरती स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। यह अपना मानव शरीर देवताओं से उत्तम है। यह मनुष्य जन्म ईश्वर का हमें सबसे बड़ा अनुग्रह और वरदान है। इस अलभ्य अवसर का, इस परम सौभाग्य का समुचित सदुपयोग करते हुए वह करना चाहिए जो करने योग्य है। वह सोचना चाहिए जो सोचने योग्य है। वह चाहना चाहिए जो चाहने योग्य है। उस मार्ग पर चलना चाहिए जो चलने योग्य है।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

पर्व विशेष

गुरुसत्ता का प्यार

पौराणिक आयान आता है कि महर्षि अगस्त्य ने दो अंजुलि में सारा समुद्र पी लिया था। परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के जीवन तथा व्यक्तित्व का भी आंकलन कोई करना चाहे तो क्रमशः तप एवं करुणा के रूप में उन दोनों महान विभूतियों का परिचय दो शब्दों में दिया जा सकता है। यूँ कहने को तो अनेकों ऐसे मिलेंगे जो इन दोनों ही शब्दों को उनके स्वयं के जीवन में भी उपस्थित दिखाना चाहते होंगे परन्तु सत्य ये ही है कि ये दोनों ही गुण, एक साथ दो श्रेष्ठतम व्यक्तित्वों में देख पाना संभव ही नहीं है।

संवेदना एवं करुणा- भावना का उच्चतम सोपान हैं। बिना तप साधना के माध्यम से जीवन को परिष्कृत एवं परिमार्जित किए- इन दोनों ही विभूतियाँ का वरदान प्राप्त कर पाना किसी के लिए संभव नहीं है। जिसका अंतःकरण संवेदना से सिक्त होता है, वह हर किसी की पीर को अनुभव करता है और प्रतिपल उसे दूर करने के लिए बेचैन रहता है। ये ही कारण तो है, जिसके कारण परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं:-

"सुना है कि आत्मज्ञानी सुखी रहते हैं और चैन की नींद सोते हैं। अपने लिए ऐसा आत्मज्ञान अभी तक दुर्लभ ही बना हुआ है। ऐसा आत्मज्ञान हमें मिल भी सकेगा या नहीं; इसमें पूरा-पूरा संदेह है। हमें चैन नहीं, वह करुणा चाहिए जो पीड़ितों की व्यथा को अपनी व्यथा कहने की अनुभूति करा सके, हमें समृद्धि नहीं वह शक्ति चाहिए, जो आँखों से आँसू पोंछ सकने की अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके।"

ऐसे प्रेम का स्वाद पाकर, जिसमें करुणा व मानवता रोम-रोम में समाए हुए हों- ऐसे प्रेम को स्वयं अपनाने के साथ-साथ, औरों की भी उपलब्ध करा देना, एक गहरी, कठिन और दुर्धर्ष तप साधना की अंतिम परिणति है। इस तरह की करुणा मात्र उन महापुरुषों के हृदय में से फूट करके आती है, जिनके अंतस में साक्षात ईश्वरीय प्रकाश अपनी उपस्थिति दर्शाता है।

परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माता जी का जीवन तो इसी मानवात्मक शिखर का प्रतीक था। दोनों ने अपना सर्वस्व, हर परिजन के लिए उत्सर्ग कर देने का भाव रखा और उसी भाव को अपनी तप साधना बना डाला। ये ही वो कारण था कि परमपूज्य गुरुदेव अपने साहित्य में इस भावना को निम्नांकित पंक्तियों में लिखते हैं।

"अपने को क्या कष्ट और अभाव है, इसे सोचने की फुरसत ही कब मिली? अपने को क्या सुख-साधन चाहिए- इसका ध्यान ही कब आया? केवल पीड़ित मावनवता की व्यथा वेदना ही रोम-रोम में समायी रही और ये ही सोचते रहे कि अपने विश्वव्यापी कलेवर परिवार को सुखी बनाने के लिए क्या किया जा सकता है? जो पाया, उसका एक-एक कण हमने उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया, जिससे शोक संताप की व्यापकता हटाने और संतोष की सांस ले सकने की स्थिति उत्पन्न करने में थोड़ा योगदान मिल सके।"

थोड़ा रुककर वे आगे लिखते हैं कि- "हमारी कितनी रातें सिसकते बीती हैं-कितनी बार हम बालकों की तरह बिलख-बिलखकर,फूट-फूट कर रोए हैं, इसे कौन कहाँ जानता है? लोग हमें सिद्ध, संत, ज्ञानी मानते हैं, कोई लेखक, विद्वान, वक्ता, नेता समझते हैं पर किसने हमारा अंतःकरण खोलकर पढ़ा-समझा है। कोई उसे देख सका होता तो उसे मानवीय व्यथा-वेदना की अनुभूतियों से, करुणा करा हसे हाहाकार करती एक उद्विग्न आत्मा या एक हड्डियों के ढाँचे में बैठी बिलखती ही दिखाई पड़ती।"

इस तरह की करुणा का उपार्जन तपसाधना के द्वारा ही संभव है। बोलचाल की भाषा में अपने को प्रेम, करुणा का जानकार कहने-समझने वाले अनेकों मिल जाऐंगे पर ज्यादा गहरे ढूढें तो इनमें से ज्यादातर मोह, वासना, आसक्ति बंधनों में बंधे दिखाई पड़ते हैं परंतु परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी की भावना तो समष्टि भर में करुणा बनकर प्रवाहित होती है। वैसे भी करुणा

किसी व्यक्ति विशेष, समूह विशेष के प्रति नहीं- सबके प्रति होती है। करुणा, तप साधना का अंतिम शिखर है जो बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्ति पर ही प्रकट होती है, पहले नहीं।

इन्हीं भावों को सत्य सिद्ध करते हुए, उन्होंने लिखा कि- "आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना जैसे ही प्रखर हुई, निष्ठुरता उसी में गलकर नष्ट हो गई। जी में केवल करुणा शेष रह गई।"

इसी करुणामय हृदय के कारण तो वे सभी परिजनों को ये आश्वासन लिखकर दे सके- "लोगों की आँखों से हम दूर हो सकते हैं पर हमारी आँखों से कोई दूर न होगा। जिनकी आँखों में हमारे प्रति स्नेह और हृदय में भावनाऐं हैं, उन सबकी तस्वीरें हम अपने कलेजे में छिपाकर ले जाऐंगे और उन देव प्रतिमाओं पर निरतंर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाया करेंगे। लोग हमें भूल सकते हैं पर हम अपने किसी स्नेही को भूलेंगे नहीं।"

उन दोनों ही महाशक्तियों का हृदय माँ का हृदय था। माँ प्यार भी करती है, बच्चे को दुलारती भी है पर साथ ही एक आँख सुधार की भी रखती है। माँ के हृदय जैसी विशालता, सहनशीलता व संवेदना विकसित किए बिना कोई भी संगठनकर्त्ता अपने आत्मीयों का परिकर न तो बढ़ा सकता है और न ही उनको निश्चित गंतव्य तक पहुँचा सकता है। गायत्री परिवार की मूल धुरी, वही करुणा, वही संवेदना है जो गुरुसत्ता ने हाथ खोलकर बोया व बाँटा था।

इसीलिए वे लिखते हैं- "हमारे जीवन के क्रियाकलाप के पीछे, उसके प्रयोजन को कभी कोई ढूँढना चाहे तो उसे इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि संत और सज्जनों की सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों का जितने क्षण स्मरण, दर्शन होता रहा, उतने समय चैन की सांस ली और जब जनमानस की व्यथा वेदनाओं को सामने खड़ा पाया तो अपनी निज की पीड़ा से अधिक कष्ट अनुभव हुआ।" उनकी इसी करुणा प्रेम, संवेदना की धाराओं से आज अनेकों के जीवन प्रकाशित, प्रदीप्त होते आए हैं और आगे भी होते चलेंगे।

• • •

शौरपुच्छ नामक वणिक ने एक बार भगवान बुद्ध से कहा- भगवान मेरी सेवा स्वीकार करें। मेरे पास एक लाख स्वर्णमुद्राऐं हैं- मैं उन सबको आपको अर्पित करना चाहता हूँ। भगवान बुद्ध बिना कुछ उत्तर दिए वहाँ से चुपचाप चले गए। कुछ दिन उपरांत वह पुनः तथागत की सेवा में उपस्थित हुआ और कहने लगा- भगवन्! कृपया यह आभूषण और वस्त्र ले लें। ये पीड़ितों के काम आयेंगे। उन्हें देने के लिए अब भी मेरे पास बहुत सा धन है। भगवान बुद्ध इस बार भी बिना कुछ कहे वहाँ से उठ गए। शौरपुच्छ बड़ा दुःखी हुआ और सोचने लगा कि वह भगवान बुद्ध को कैसे प्रसन्न करे?

वैशाली में कुछ दिनों बाद एक धर्मसमेलन का आयोजन हुआ जिसमें हजारों व्यक्ति समिलित हुए। उनके लिए बड़ी व्यवस्था जुटानी थी। सैंकड़ों शिष्य और भिक्षु काम में लगे हुए थे। उस दिन शौरपुच्छ ने किसी से कुछ नहीं पूछा और काम में जुट गया। रात बीत गयी, सब लोग चले गये पर शौरपुच्छ काम में निमग्न रहा। भगवान बुद्ध उसके पास पहुँचे और बोले- वत्स! तुमने प्रसाद पाया या नहीं? शौरपुच्छ का गला रुँध गया, उसने तथागत को प्रणाम किया तो बुद्ध बोले- वत्स! भगवान धन का नहीं निष्ठा का भूखा है। उसे वही अर्पित करो।

कार्य करने में ढूँढें आनंद

प्रायः लोग अपनी किसी सफलता की प्राप्ति में जश्न मनाते हैं, खुशी मनाते हैं और आनन्द का अनुभव करते हैं और असफलता की प्राप्ति होने पर दुःखी होते हैं, निराश हो जाते हैं। इसके विपरीत जो ज्ञानवान पुरुष हैं, वे न तो सफलता में आनन्द मनाते हैं और न ही असफलता में दुःखी होते हैं। उनके लिए तो कर्म करते समय प्राप्त होने वाला आनन्द ही सच्चा आनन्द होता है।

सही मायने में कर्म करते समय प्राप्त होने वाला आनन्द ही काम करने का सबसे बड़ा पुरस्कार है, क्योंकि काम करते समय यदि आनन्द नहीं है, तो वह कार्य ही बोझ के समान होता है, भार के समान प्रतीत होता है। जो कार्य बेमन से, जबरदस्ती किया जाता है, उस कार्य में वह सौन्दर्य नहीं होता, वह कौशल नहीं होता, जो उसे सार्थक बना सके।

जिस कार्य को करते समय ही मन उसमें इतना लीन हो जाता है कि फिर कार्य करते हुए समय के गुजरने का अहसास नहीं होता, ऐसा कार्य ही व्यक्ति को सच्चा सुख देता है और ऐसा कार्य करते हुए ही व्यक्ति को जीवन की सार्थकता का अहसास होता है।

कर्म करते समय मन में यदि शंका-कुशंका है, कर्म करने में मन नहीं लग रहा है, मन कर्म न करने के बहाने ढूँढ रहा है, तो इसका तात्पर्य यह है कि किया जाने वाला कर्म मन की अभिरुचि का नहीं है।

हमारे जीवन में बहुत से ऐसे कार्य होते हैं, जिनमें हमारी रुचि नहीं होती, लेकिन वो हमारे लिए बहुत जरूरी होते हैं और उन्हें हमें करना पड़ता है और फिर धीरे-धीरे उस कर्म को करने में ही आनन्द आने लगता है। उदाहरण के लिए- बच्चों का मन खेलने-कूदने में अधिक लगता है, इसलिए उन्हें खेलना-कूदना बहुत अच्छा लगता है और पढ़ना उन्हें कम अच्छा लगता है, लेकिन जब उन्हें पढ़ाई के महत्त्व को समझाया जाता है, तो धीरे-धीरे बच्चे भी पढ़ाई-लिखाई का महत्त्व समझने लगते हैं और पढ़ने-लिखने में अपना मन लगाने लगते हैं। बच्चे तब पढ़ने-लिखने के लिए बहुत मेहनत करते हैं, फिर पढ़ाई-लिखाई ही उनकी जीवन-साधना बन जाती है। जो विद्यार्थी परीक्षा में पास हो जाते हैं, वे अपने द्वारा पढ़ाई-लिखाई में की जाने वाली मेहनत की खुशी मनाते हैं और जो विद्यार्थी परीक्षा में फेल हो जाते हैं, वो दुःखी होते हैं कि उन्होंने जो भी पढ़ाई के लिए मेहनत की, वह व्यर्थ चली गयी।

युगऋषि का एक कथन है- असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयास पूरे मन से नहीं हुआ। वास्तव में असफलता व्यक्ति को दुःखी करती है और सफलता उसे सुखी करती है। ये भी सच है कि असफलता व्यक्ति को तभी प्राप्त होती है, जब सफलता हेतु किया जाने वाला प्रयास आधा-अधूरा होता है या उसमें कुछ कमी होती है। यदि व्यक्ति अपनी असफलता को सफलता प्राप्ति के मार्ग की सीढ़ी बना ले, उससे कुछ सीखते हुए आगे बढ़े, तो निश्चित रूप से असफलता ही व्यक्ति को वह सफलता दिलाती है, जो बहुत मूल्यवान और उल्लेखनीय होती है।

संसार में ऐसे बहुत से व्यक्तियों के उदाहरण देखने को मिलते हैं, जो असफलताओं की अनगिनत सीढ़ियों को पार करते हुए सफलता के शिखर तक पहुँचे। ये लोग न तो अपनी असफलताओं से घबराए और न ही अपनी असफलताओं से निराश हुए, बल्कि अपनी असफलताओं से उन्होंने सबक सीखा, जिनसे उनके द्वारा बार-बार की जाने वाली त्रुटियाँ और गलतियाँ दूर हुईं और फिर वे सफल हुए। यदि सफलता व असफलता ही व्यक्ति को सुखी व दुःखी करते, तो कोई भी व्यक्ति कर्म करने में सुख व संतोष का अनुभव नहीं करता। वास्तविकता ये ही है कि कर्म करते समय भी व्यक्ति को सुखद एहसास होता है, मन को संतोष मिलता है, इससे जीवन सार्थक महसूस होता है।

कर्म करने की इस सार्थकता को महसूस करना हो, तो एक दिन ऐसा बिताकर देखना चाहिए, जब कुछ काम न करना हो, बस

लेटे रहना हो। लेटे रहने में भी मन का मनोरंजन न करना हो, तब पता चलता है कि मन उस निष्क्रिय अवस्था में कितना बेचैन होता है, जब वह कुछ कर नहीं पाता। वास्तव में मन तो कुछ न कुछ करना चाहता है। कुछ न कुछ वह सोचता रहता है, उसमें अपना रस खोजता रहता है, खाने-पीने में, कुछ देखने में, कुछ सुनने में वह अपने आनन्द में मगन रहता है और आनन्द में मगन रहना चाहता है, लेकिन जब उसका यह आनन्द किसी काम को करने के कारण भंग होता है, तो वह परेशान होता है और उत्पात मचाता है, यानि काम करने में फिर उसका मन नहीं लगता है।

यदि मन को किसी तरह से वश में करके कार्य करने में मन को लगाया जाए, तो धीरे-धीरे मन उसमें अपना आनन्द खोजने लगता है। दुनिया में जितने भी आविष्कार हुए हैं, वे सब मन की गहराईयों में जाकर ही खोजे गए हैं। मन जब खोज की दिशा में गहराई से लीन होता गया, तल्लीन होता गया, तो फिर नई-नई खोजें अपने अस्तित्व में आयीं। जितने भी वैज्ञानिक हुए हैं, उन्होंने अपने कई-कई घण्टे व कई-कई दिन किसी नए आविष्कार की खोज में लगा दिए, तब कहीं जा कर उनकी खोज सार्थक हुई।

जिस तरह से वैज्ञानिक लोग सफलता व असफलता की परवाह किए बिना अपने कर्म में इतना लीन होते हैं कि उन्हें बीतने वाले समय का अहसास भी नहीं होता और इसी तल्लीनता में वे कुछ ऐसा सार्थक कर पाते हैं, जिसे देखकर दुनिया चमत्कृत होती है और उनके आविष्कार से लाभान्वित होती है- उसी तरह से यदि ध्यान के माध्यम से मन की गहराईयों में प्रवेश किया जाए, तो भी व्यक्ति अपने अन्तर्जगत में कुछ न कुछ खोजता है और जब उसकी यह खोज चरम पर होती है, तो वह स्वयं को उपलब्ध होता है। स्वयं को पाने की इस राह पर वह अनगिनत सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

यूँ ही नहीं कहा जाता कि हर व्यक्ति मूल्यवान है। खास व्यक्ति और सामान्य व्यक्ति में फर्क यही है कि खास व्यक्ति अपने मूल्य को समझता है, अपने बेशकीमती अन्तर के खजाने को वह प्राप्त कर चुका होता है, जबकि सामान्य व्यक्ति उस बेशकीमती खजाने को बाहर खोजता फिरता है। अन्दर का खजाना कभी रिक्त न होने वाला और अनवरत आनन्द बिखरने वाला होता है, जबकि बाहरी दुनिया का खजाना चैन चुराने वाला, नश्वर व प्रतिपल तनाव देने वाला होता है।

यह सच है कि अन्दर के खजाने से बाहरी दुनिया के ऐशोआराम नहीं खरीदे जा सकते, लेकिन यह भी सच है कि बाहरी दुनिया के खजाने से भीतर के जगत में प्रवेश भी नहीं पाया जा सकता।

जब कर्म में आनन्द अनुभव करने की बात होती है, तो इसका तात्पर्य है कि बाहरी कर्म करते हुए भीतर के आनन्द को बाहर उड़ेलना, ताकि हमारी बाहर की दुनिया भी आनन्द से सराबोर हो सके। निश्चित रूप से कर्म करने में जो आनन्द है, जो सार्थकता है, वह उसकी सफलता या असफलता की प्राप्ति में नहीं है। इसलिए मन लगाकर पूरे उत्साह के साथ अपना कर्म करना चाहिए और कर्म करने में किसी भी प्रकार से हतोत्साहित नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रसन्नता के साथ अपना कर्म करना चाहिए। • • •

गाँधीजी से एक विदेशी सज्जन ने पूछा- 'आप बड़ी से बड़ी कठिनाई देखकर भी रुकते नहीं, निर्भय होकर आगे बढ़ जाते हैं। आपकी इस निर्भीकता का क्या रहस्य है?'

गाँधीजी बोले- 'भगवान के उस वचन पर मेरी पूरी आस्था है कि कल्याण पथ के पथिक की दुर्गति नहीं होती। जनकल्याण का लक्ष्य मेरे सामने है, रास्ता तंग है, तलवार की धार जैसा है तो भी क्यों डरूँ? उस पर चलने के अयास से मेरा भी तो स्तर बढ़ेगा, आत्मकल्याण भी तो सधेगा। इस आस्था के रहते कठिनाइयाँ पार करने में रस आता है।'

विकास के सुदृढ़ आधार

आज हम परिवर्तन के संक्रांतिकाल से गुजर रहे हैं। व्यक्ति हो या समाज, राष्ट्र हो या विश्व- हर कहीं कालचक्र का विप्लवी प्रवाह ऐसी घटनाओं को अंजाम दे रहा है, जिनको अप्रत्याशित, आश्चर्यजनक एवं अद्भुत ही कहा जा सकता है। आर्थिक क्षेत्र हो या राजनैतिक, मीडिया जगत हो या न्यायपालिका, पारिवारिक जीवन हो या सामाजिक, धर्म-अध्यात्म हो या प्रकृति-पर्यावरण, सभी जगह उठापठक का ऐसा क्रम चल पड़ा है कि पुरानी व्यवस्था में समाहित गलन, सड़न, ठहराव, भ्रष्टाचार एवं जड़ता- अब और बर्दाश्त नहीं हो सकते। परिवर्तन एवं विकास का एक नया आधार तैयार हो रहा है, जिसके आधार पर वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में बासंती बयार के हल्के झोंके बहना शुरू हो गए हैं। हम इस आधार को क्रमिक रूप में और पुता करें- इसके लिए विकास की समग्र समझ जरूरी है जिससे कि हमारी नियति जुड़ी हुई है।

प्रकृति-गांव एवं जड़ों से जुड़ा विकास - यह आदिकाल से ही सुविकसित सभ्यताओं-संस्कृतियों का आधार रहा है। वन-अरण्य में जन्मी व विकसित भारत की वैदिक संस्कृति इसका बेजोड़ उदाहरण रही है। प्रकृति के साथ मानव के सहयोग-सहकार एवं आत्मीयता भरे रिश्तों ने दीर्घकाल तक एक स्वस्थ-संतुलित विकास को सुनिश्चित रखा। भूमि को माता की संज्ञा दी गई और धरतीपुत्र होने की गर्वोक्ति के साथ इस रिश्ते को निभाया गया। प्रकृति के हर घटक में देवत्व के दर्शन और प्रकृति-मानव का श्रद्धा से भरा सबन्ध एक उच्चस्तरीय संस्कृति की मिसाल पेश करता रहा। इसी रिश्ते को खोकर आज का इंसान प्रकृति को महज दोहन एवं शोषण की वस्तु मानता है, जिसके दुष्परिणामों को ग्लोबल वार्मिंग से लेकर प्रदूषित होते प्रकृति के हर घटक और दमघोंटू वातावरण में दम तोड़ते मानवीय अस्तित्व के रूप में देखा जा सकता है। ये सब प्रकृति के साथ पुराने पावन रिश्ते को समझने एवं पुनर्स्थापित करने की ओर संकेत कर रहे हैं।

गांव से शहरों की ओर पलायन इसी का एक पहलू है। आज उत्तराखंड की चालीस प्रतिशत जनसंख्या गांव से शहरों की ओर पलायन कर चुकी है। यही स्थिति न्यूनाधिक रूप में अन्य कई प्रांतों की है। कहाँ प्राकृतिक सौंदर्य और वन-प्रांतर का एकांतिक शांति-सुकून भरा जीवन और कहाँ शहरों का शोर-शराबा और प्रदूषण भरा विक्षिप्त करने वाला वातावरण लेकिन मनुष्य के लोभ, संकीर्ण स्वार्थ और सोच के दिवालियापन का क्या कहना- जो स्वर्गोपम प्रकृति के आँचल को छोड़कर शहरी जीवन के नारकीय जीवन को चुनने के लिए बाध्य है। फिर गांव के विकास को लेकर सरकारी उपेक्षा अपनी जगह है, लेकिन समझदार एवं प्रबुद्ध नागरिकों के प्रयास भी तो मायने रखते हैं, जो प्रकृति एवं गांवों को ध्यान में रखकर विकास को अपने स्तर पर बनाए रखने का साहस कर सके।

प्रकृति के हर घटक में देवत्व का दर्शन हमें विकास के दूसरे आयामों की ओर ले जाता है, जो हमारी सनातन विशेषता रही है लेकिन आज इसके प्रति भी हमारा उपेक्षा भरा भाव अधिक दिखता है, जिसकी ओर पश्चिमी रुझान तेजी से बढ़ रहा है। यह प्रकृति के पार ईश्वर के दर्शन करने की उत्कंठा से उपजा उच्चस्तरीय जीवन दर्शन है।

आध्यात्मिक विरासत से जुड़ा विकास - यह हमारी शाश्वत-सनातन विरासत रही है। इकबाल की उक्ति कि मिट गए यूनान-रोमां, कुछ हस्ती है कि मिटती नहीं हमारी- उसका आधार राष्ट्रीय जीवन में समाहित यह आध्यात्मिक तत्व ही रहा है। इसी का संस्पर्श लिए यहाँ के साहित्य, कला, संगीत, नृत्य से लेकर दर्शन एवं विज्ञान की धाराओं में एक मौलिक विशिष्टता रही है, जिसने आधुनिक विज्ञान का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। इसी से पुष्ट परंपराओं ने राष्ट्रीय जीवन को विकास के ऐसे शिखर तक पहुँचाया है, जिसके बल पर भारतवर्ष कभी आर्थिक क्षेत्र में सोने की चिड़िया तथा ज्ञान के क्षेत्र में जगद्गुरु पद पर सुशोभित रहा। काल के साथ जब हम इस सनातन प्रवाह से विमुख होते गए, हमारा विकास एकांगी होता गया, तब हम अपने ही अंतर्विरोधों के साथ अवसान के अंधेरयुग में खोते गए। इसी का एक और दुष्परिणाम है कि हम गंगा नदी को एक और मैया कहकर पूजा

करते हैं, दूसरी ओर इसको गंदा एवं प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। अतः आज फिर अपनी परंपरागत विरासत को पहचानते हुए विकास की सनातन धारा को पकड़ने, प्रकृति के हर घटक में ईश्वरीय तत्व को देखने व इसको जीने का समय आ गया है, जिसका अनिवार्य हिस्सा होगा- अध्यात्म के साथ वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और प्रगतिशील सोच।

वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त विकास - मात्र धर्म-अध्यात्म एवं परपराओं की लकीर पीटने भर से काम चलने वाला नहीं। इनको ठोस आधार पर प्रस्तुत करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ अपनाना समय की आवश्यकता है, जिनमें युगचुनौतियों के समाधान भी निहित हों। यह आध्यात्मिक दृष्टि से उपजी समग्र सोच के साथ संभव है कि विज्ञान और तकनीकी का इस्तेमाल मानव हित में किया जाए। आइंस्टाइन ने ठीक ही कहा था कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के बिना अंधे-लंगड़े की जोड़ी है।

वैज्ञानिक दृष्टिविहीन धर्म, रुढ़ियों के मकड़जाल में उलझाकर, समाज और मानवता को विखंडित कर कई दशक पीछे ले जा सकता है। वहीं आध्यात्मिक संवेदना से हीन विज्ञान भी पृथ्वी के विनाश की लीला रच सकता है, जो पिछली शताब्दी में बखूबी हुआ है और आज इक्कीसवीं सदी में तो तकनीक की दिन दौगुनी-रात चौगुनी प्रगति के साथ इसका स्वरूप और भी सूक्ष्म एवं विकराल होता जा रहा है। सृजन का संतुलित आधार अध्यात्म और विज्ञान के सयक् उपयोग से ही संभव होना है। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन परपराओं को परिमार्जित करना होगा, जो आज अप्रासंगिक हो गयी हैं। बिना कर्मकाण्ड का भाव समझे मात्र विह्नपूजा करने में कोई समझदारी नहीं। अपनी संस्कृति का मूल भाव खोए बिना वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना समय की माँग है।

श्रम-स्वाभिमान और स्वाबलंबन से जुड़ा विकास - किसी देश व समाज की वास्तविक संपदा उसके स्वाभिमानी, प्रबुद्ध व स्वाबलंबी नागरिक हैं। ये ही विकास के ठोस आधार हैं। परावलंबी एवं परामुखापेक्षी नागरिकों के आधार पर किसी सशक्त समाज व देश की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बाबू बनाने वाली आधुनिक शिक्षा ने श्रम की गरिमा को धूल-धूसरित किया है, जिसके चलते पढ़ा-लिखा युवा अपने गांव में वापस लौटना नहीं चाहता। खेत-बागों में काम करना उसे अपनी गरिमा के प्रतिकूल लगता है और आरामतलब नौकरी-पेशे में ही वह अपने जीवन के मायने खोजता है।

ऐसी अपरिपक्व सोच वाली शिक्षा ने एक कामचोर और नाकारा पीढ़ी का ही निर्माण किया है, जो कम से कम में अधिक से अधिक लाभ के लिए लालायित रहती है। अपराध व भ्रष्टाचार में ऐसे समूह की भूमिका बढ़-चढ़कर देखी जा सकती है। विकास की योजनाओं का कुछ हिस्सा ही ऐसे में नीचे जरूरतमंदों तक पहुँच पाता है। स्वाभिमान, कर्मठ और आत्मनिर्भर पीढ़ी का निर्माण एक महत चुनौती है, जो कि विकास की ठोस आधारभूमि तैयार कर सके। सबके साथ न्याय और सबसे नीचे के वंचित तबके तक विकास के लाभ को सुनिश्चित करती भागीदारी, संवेदी तंत्र की एक अन्य आवश्यकता है।

अंतिम छोर तक पहुँचे विकास - यह विकास का मानवीय स्वरूप है, जिसके आधार पर ऊपरी स्तर पर बनाई जाने वाली नीतियों, योजनाओं और संपन्न हो रहे विकास कार्यों का लाभ एवं भागीदारी निनतम स्तर एवं तबके तक सुनिश्चित हो सके। यह अर्जन के बाद वितरण की एक न्यायपूर्ण व्यवस्था का निर्माण है। सही मायने में यह संवदेनायुक्त मानवीय धर्म का निर्वाह है, जिसमें हर जरूरतमंद नागरिक तक कल्याणकारी योजना का लाभ पहुँचने की बात सोची जा सके। लोकतांत्रिक प्रणाली में यह विकेंद्रीकृत प्रणाली की बात हो रही है, जिसमें विकास का लाभ समाज के आम नागरिक व अंतिम तबके तक सुनिश्चित हो सके।

उपरोक्त पाँच आधारों पर बनाया गया विकास का प्रारूप वह सब कुछ सुनिश्चित करने में सक्षम होगा, जिसके आधार पर व्यक्ति हो या परिवार, समाज हो या राष्ट्र- हर स्तर पर सर्वांगीण उत्कर्ष का लक्ष्य हासिल हो सकेगा। जिसमें बाहरी प्रगति व आंतरिक शांति के साथ नागरिकों के समग्र विकास को देने वाला वातावरण तैयार होगा, जिसके आधार पर बासंती बयार की सुवास सहज ही हवाओं में तैर रही होगी।

• • •

सपनों की दुनिया

हमारे जीवन का सपनों से एक गहरा ताल्लुक है क्योंकि सपनों में हम कुछ देखते हैं, कुछ महसूस करते हैं। हर रात्रि जब हम सोते हैं, तो सपनों की सुनहरी दुनिया में कहीं खो जाते हैं। ये दुनिया कभी रंगीली प्रतीत होती है, तो कभी डरावनी। कभी विचित्र सी दिखती है, तो कभी अबूझ पहेली की तरह।

सपनों की दुनिया चाहे कैसी भी हो, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि इससे हमारा कोई-न-कोई सबन्ध है, तभी तो हम इसकी दुनिया में प्रवेश करते हैं और थोड़े ही समय के लिए सही, इसे हम जी पाते हैं। सपनों की यह दुनिया एक रहस्य का विषय है, अचरज का विषय है, अन्वेषण का विषय है, क्योंकि इस दुनिया में जितने लोग हैं, उतने ही तरह के अलग-अलग सपने लोगों को दिखा करते हैं, ये सपने कभी-कभी किसी के एक जैसे भी हो सकते हैं, लेकिन प्रायः हर व्यक्ति का प्रत्येक सपना मौलिक होता है।

यह सच है कि सपने मायारूप हैं, इनका वास्तविकता के धरातल से कोई सबन्ध नहीं है लेकिन फिर भी सपने कुछ कहते हैं, कुछ इशारा करते हैं, हमें कुछ महसूस कराना चाहते हैं और कुछ नहीं तो सपने हमें कुछ समय के लिए ही सही वास्तविक दुनिया से भिन्न एक अन्य दुनिया में ले जाते हैं, जो कल्पनातीत होती है।

जब कोई सपना हम पूरा देखते हैं और फिर जागते हैं, तो हम तरोताजा महसूस करते हैं लेकिन जब सपना देखते समय कोई हमें बीच में ही झकझोर कर उठा देता है, तो कुछ समय के लिए हम बेचैन हो जाते हैं, परेशान होते हैं और गुस्से में आकर कभी-कभी बोल देते हैं कि हम सपना देख रहे थे, इसे पूरा तो देखने देते। इसका तात्पर्य है कि सपने देखने में हमें अच्छा महसूस होता है, सपनों में भी एक रस होता है, जिसे हम पाना चाहते हैं, अनुभव करना चाहते हैं।

जब कभी हम अच्छा सपना देखते हैं, तो उसे देखते रहने का मन करता है और जब कभी हम बुरा सपना देखते हैं और बीच में हमारी नींद टूट जाती है, तो जागने पर यही लगता है कि चलो ये हकीकत नहीं था, बुरा सपना ही था। कभी-कभी सपने इतने स्पष्ट दिखते हैं कि हमें यह भेद करना मुश्किल हो जाता है कि ये सपना है या हकीकत, इसलिए वास्तविक दुनिया में जब कभी हमारे साथ कुछ बहुत अच्छा होता है तो हमें यह भ्रम होता है कि कहीं यह सपना तो नहीं है और वास्तविकता से इसका कोई सबन्ध न हो।

इस तरह वास्तविक जीवन भी कभी-कभी सपने के समान लगता है और सपने भी कभी-कभी हमें वास्तविक जीवन के समान लगते हैं क्योंकि दोनों आपस में एक समान हैं। सपने में भी हम दृश्य देखते हैं, आवाजें सुनते हैं, सुगन्ध-स्पर्श महसूस करते हैं लेकिन सपनों में कुछ करने पर हमारा वश नहीं होता, हम चाह कर कुछ कर भी सकते हैं और नहीं भी क्योंकि सपनों में हम मन से कुछ करते हैं, अपने शरीर से नहीं। इसलिए सपनों में जब हम तेजी के साथ दौड़ना चाहते है, तो दौड़ नहीं पाते। कहीं भागना चाहते हैं, तो भाग नहीं पाते।

इसके विपरीत वास्तविक दुनिया में हम जो चाहें, वो कर सकने में सक्षम होते हैं, अपनी इच्छा से चल फिर सकते हैं, काम कर सकते हैं, दृश्य देख सकते हैं, सुगन्ध, स्पर्श व स्वाद का अनुभव कर सकते हैं। सपनों की दुनिया में और वास्तविक दुनिया में बहुत सारी समानताएँ होने के कारण इनमें फर्क करना कभी-कभी मुश्किल हो जाता है।

इनमें अन्तर बस इतना है कि सपनों की दुनिया वास्तविक नहीं है और वास्तविक दुनिया स्वप्न नहीं है, लेकिन सपनों की दुनिया वास्तविक दुनिया के दृश्यों से जुड़ी हुई है भी और नहीं भी। तभी तो वास्तविक दुनिया के दृश्य हमें सपनों में दिख जाते हैं और कभी-कभी वास्तविक दुनिया की अबूझ पहेलियों के हल भी हमें

सपनों में मिल जाते हैं। सपनों में हम अपने भविष्य की घटनाओं को देख सकते हैं और अतीत की घटनाओं को ी देख सकते हैं।

देखे जाने वाले सपनों पर हमारा वश नहीं होता, अपने आप ही दृश्य विनिर्मित होते हैं और हमें दिखते चले जाते हैं, इसलिए सपने जो देखे जाते हैं, वो विचित्र होते हैं, क्योंकि प्रायः सपनों में जैसे दृश्य देखे जाते हैं, वास्तविकता में वैसा घटित नहीं होता। सपनों में समय की कोई सीमा नहीं होती। थोड़े ही समय में हम न जाने कितने दृश्य सपनों में देख लेते हैं। सपनों में हम अपनी वास्तविक दुनिया से कितने भी दूर के दृश्य देख सकते हैं और वास्तविक जीवन के आसपास की घटनाओं को भी देख सकते हैं।

सपनों में हम अपने मन से वो कार्य कर सकते हैं, जो हम वास्तविक दुनिया में नहीं कर पाते, जैसे- सपनों में हम हवा में उड़ सकते हैं, पानी में तैर सकते हैं, अजीबोगरीब करतब करते हुए स्वयं को देख सकते हैं। जो हम बनना चाहते हैं, वो हम बनते हुए स्वयं को देख सकते हैं, और यह सब देखते समय आनन्द का अनुभव कर सकते हैं, सपनों में हमें देवी-देवताओं के दर्शन, मंदिरों के दर्शन हो सकते हैं और अजीबोगरीब भूत-प्रेत, जिन्न आदि भी सपनों में देखे जा सकते हैं। हिंसक जानवर, पालतू जानवर, पक्षी, साँप, कीड़े-मकोड़े भी सपनों में देख जा सकते हैं। इस तरह सपने में कुछ भी देखा जा सकता है। हमारी मनःस्थिति, परिस्थिति व शारीरिक स्थिति क्या है- उस पर ी हमारे सपने निर्भर करते हैं, हमारी इच्छाएँ-आकांक्षाएँ क्या हैं? उससे सबन्धित सपने भी हमें दिख जाते हैं।

वास्तव में सपनों की दुनिया सूक्ष्म जगत की दुनिया होती है। यदि हमारा शरीर स्थूल जगत का आधार है, तो इसे संचालित करने वाला हमारा मन सूक्ष्म जगत का आधार है। हमारा जीवन जो आज स्थूल शरीर के माध्यम से दृश्य है, वह हमारे मन के साथ न जाने कितने जन्मों की यात्रा करते हुए आ रहा है, कितने शरीर उसने बदले हैं, कितना जीवन उसने जिया है, इस बात का पता तो हमें नहीं होता, लेकिन उन सभी जन्मों के अनुभव, प्रवृतियाँ व कर्म-संस्कार हमारे चित्त में संग्रहित हैं।

जब हम सपनों की दुनिया में खो जाते हैं, तो हम अपने मन के माध्यम से चित्त के लोक में विचरण करने लगते हैं और दृश्यों का अवलोकन करने लगते हैं तो यही कारण है कि सोने की कोशिश करते समय हम कब सो जाते हैं, हमें पता ही नहीं चलता, लेकिन यदि कोई महसूस करे, तो सोने के इस प्रयास में हमें एक हल्का झटका-सा लगता है और हम सो जाते हैं। इस झटके को भले ही हम महसूस न कर पाऐं लेकिन सोते समय यदि कोई हमारे साथ है और वो हमें पकड़े हुए है, तो हमारे सोने के अहसास को इस माध्यम से वो महसूस कर सकता है। वास्तव में सोते समय हमारी चेतना हृदय क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है, जहाँ हमारे चित्त का निवास होता है। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि सोते समय हमें हृदयक्षेत्र पर ध्यान करते हुए सोना चाहिए।

जब हम सोकर उठते हैं, उस समय यदि गौर किया जाए, तो हमें अपनी धड़कनें बहुत स्पष्ट सुनाई देती हैं, क्योंकि सोकर उठते समय चेतना को शरीर में पुनः सक्रिय होने में थोड़ा समय लगता है, इसलिए लोग कहते हैं कि सोकर जगते समय एकदम हड़बड़ी नहीं करनी चाहिए, बल्कि आराम से उठना चाहिए। कभी-कभी जब हम सोकर उठते हैं, तो हमें थोड़ी देर के लिए कुछ समझ में नहीं आता, हम दिन को रात और रात को दिन समझ लेते हैं, या हम यह सोचने लग जाते हैं कि हम वास्तव में कहाँ पर हैं? क्योंकि सोते समय हमारी चेतना अन्यत्र कहीं होती है और सोकर जागने के बाद वह हमारे शरीर में वापस आने लगती है, इसलिए इस अन्तराल के कारण हमें थोड़ी देर के लिए कुछ समझ नहीं आता।

सपनों में हमें वह सब दिखता है, जो हम दुनिया से छिपाना चाहते हैं, अपने मन में दबाना चाहते हैं, हमारे मन का द्वन्द्व, हमारी मनोग्रंथियाँ, हमारी वासनाएँ- सब उभरकर सपने में आ जाते हैं,

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदायुक्तोनित्यंस्यादात्मवान्द्विजः॥

अर्थात् वेद और स्मृतियों द्वारा बताए गए आचरण ही परम धर्म कहा गया है। अतः जो आत्मा की उन्नति चाहते हैं, उन्हें हमेशा सदाचरण करना चाहिए।

एक तरह से सपने हमारे मन को हल्का करने आते हैं, जिस तरह से हमारा शरीर जो भोजन ग्रहण करता है, वह यदि पच जाता है, तो अवशेष मल रूप में शरीर से विसर्जित हो जाता है। यदि भोजन नहीं पचता है, अपच हो जाता है, तो उल्टी के माध्यम से बाहर आ जाता है। दोनों ही माध्यम से शरीर हमारा हल्का होता है।

उसी तरह मन को हल्का करने का कार्य सपनों के माध्यम से होता है। हम अपने जीवन में अपने मन पर भांति-भांति के दबाव डालते हैं, हमें ये करना चाहिए और ये नहीं करना चाहिए, वैसा नहीं करना चाहिए। हमारा मन भले ही कुछ करना चाहे, लेकिन परिस्थितियों का दबाव, बड़ों का दबाव, समाज का दबाव, नैतिक व चरित्रवान बने रहने का दबाव ऐसा होता है कि हम अपने मन की अनैतिक इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाते।

चूँकि ये सब दबाव हमारे स्वप्न में नहीं होते, इसलिए सपनों में वो सब दृश्य उभरकर सामने आ जाते हैं, जो हम वास्तविक दुनिया में संकोचवश नहीं कर पाते। एक तरह से ऐसा करने से हमारा मन हल्का होता है, मन पर पड़ने वाला दबाव कम होता है। इस तरह स्वप्न एक तरह से मन का विरेचन हैं।

सोते समय सपने देखना हमें अच्छा लगता है, सपने देखने में हमारा मन लगता है, हम बड़े ही एकाग्रचित होकर सपने देखते हैं, उनमें कोई व्यवधान आए, ऐसा हम नहीं चाहते और सपने देखने के बाद जब हम उठते हैं, तो स्वयं को ऊर्जावान महसूस करते हैं, सपने देखने के बाद, सोकर उठने के बाद हमारी शारीरिक थकान उतर जाती है, क्योंकि भले ही हमारा मन सपने देखने में व्यस्त रहता हो, लेकिन उस अवस्था में हमारा शरीर पूरी तरह से आराम करता है यानि निश्चेष्ट, गतिहीन होकर व शांत चेतना के साथ आराम करता है। इसलिए तो गहरी नींद में सोते समय यदि हमें मच्छर भी काटते हैं तो हमें महसूस नहीं होता।

इस तरह सपने जिनका सबन्ध हमारे सूक्ष्म जगत से है, हमारे चित्त से है, आँखें बंद करने पर, सो जाने पर उसमें हमारा प्रवेश होता है, हम प्रायः रोज ही सपनों की दुनिया में सैर करते हैं, फिर भी सपनों की पूर्ण वास्तविकता से अपरिचित रहते हैं। सपनों की इस दुनिया से परिचय होने पर व्यक्ति जीवन में सचेत, सजग होना सीख लेता है और फिर जीवन में प्रगति के नए सोपानों को छूता चला जाता है।

• • •

समुद्र से जल भरकर वापस लौट रहे बादलों को विध्यांचल शिखर ने बीच में ही रोक दिया। बादल विध्यांचल के इस कृत्य पर बड़े कुपित हुए और युद्ध ठानने को तैयार हो गए। विध्यांचल ने बड़े सौय भाव से कहा- महाभाग! हमारी अभिलाषा आपसे युद्ध करने की नहीं है। हमारी तो एक ही अभिलाषा है कि आप यह जल जो लिए जा रहे हैं, वह आपको जिस उदारता के साथ दिया गया है, उसी उदारता के साथ आप भी इसे प्यासी धरती को पिलाते चलें तो कितना अच्छा हो।

बादलों को अपने अपमान की पड़ी थी, सो वे विध्यांचल का कहना न मान कर युद्ध के भाव से उससे भिड़ गए परंतु उन्होंने जितना शिखर के साथ युद्ध किया, उतना ही उनका बल क्षीण होता गया और धरती को अपने आप जल मिलता गया। कोई न चाहे तो भी प्रकृति अपना काम करा ही लेती है, पर श्रद्धापूर्वक वही कार्य करने का आनंद कुछ और है।

तुलसीदास जी के साहित्य में नारी पात्र

तुलसीदास के कालजयी महाकाव्य रामचरितमानस में नारी के प्रति असीम समान को प्रकट किया गया है। असंगत अर्थों और अतार्किक तथ्यों के कारण कतिपय लोग उनके साहित्य में नारी के प्रति असमान दिखाना चाहते हैं परन्तु ऐसा है नहीं। तुलसीदास जी और सूरदास जी का भारतीय संस्कृति की रक्षा में अनुपम योगदान है। इन दोनों महान कवियों ने राम और कृष्ण को उस समय भारतीय जनमानस में भगवान के रूप में स्थापित किया, जब अनेकों सामाजिक विरोधाभास भारतीय मन-मस्तिष्क को व्यथित कर रहे थे।

युगीन आवश्यकता के रूप में इन दोनों कवियों ने राम और कृष्ण की स्तुति में ग्रंथ लिखे और इन महापुरुषों के साथ कई अलौकिक बातें बतायीं। बाद में कुछ और लोगों ने प्रक्षेप कर इन ग्रंथों को विकृत किया गया। कुछ आलोचकों के अनुसार, इन दोनों कवियों के कारण राम और कृष्ण तो पूजनीय हो गये लेकिन भारतीय धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप विकृत हो गया। तुलसीदास जी पर आरोप है कि उन्होंने नारी को 'ताड़न' की अधिकारी कहा है। इस बात को कितने ही लोगों ने अपने-अपने लेखों में उद्धृत किया है और नारी जाति की अवमानना करने के लिए बार-बार तुलसीदास जी को उद्धृत किया है। फलस्वरूप समाज में यह धारणा रूढ़ हो गयी कि तुलसीदास जी नारी जाति के प्रति समानित भाव नहीं रखते थे। इस विकृत धारणा से नारी जाति पर कई प्रकार के अत्याचार हुए।

स्मरण रहे कि किसी कवि या लेखक का अपने ग्रंथ का कोई प्रतिपाद्य विषय अनिवार्यतः होता है। प्रतिपाद्य विषय अपने तर्कों, तथ्यों एवं विचारों से समृद्ध होता है। इसके अभाव में विषय महत्त्वहीन हो जाता है। यदि वह अपने प्रतिपाद्य विषय से भटकता है या पहले तो उसके पक्ष में तर्क देता है और बाद में अपने ही तर्कों का खण्डन करता है तो दो बातें हो सकती हैं- पहला उस कवि अथवा लेखक में चिंतनशीलता का अभाव है। दूसरा यह भी संभव है उसके ग्रंथ में किसी अन्य ने अपना मत जोड़कर उसे विकृत कर दिया हो। विद्वान लोग प्रक्षेपों की इन्हीं युक्तियों के आधार पर ही व्याया करते हैं।

अब तुलसीदास जी की रामचरितमानस को आप लें और देखें कि उन्होंने नारी जाति के लिए अन्यत्र भी ऐसे तथ्यों का समावेश किया या एक ही स्थान पर ऐसा कहा है? अन्य स्थानों पर हम देखते हैं कि तुलसीदास जी ने नारी को पुरुष की पूरक ही माना है। वेद के शब्दों में उसे पति की संरक्षिका व पोषणक ही स्वीकार किया है।

उन्होंने सामयकि परंपरा के अनुसार पोष्या को दासी शब्द से उद्धृत किया है लेकिन दासी का अर्थ कहीं भी ताड़ना की अधिकारी के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। भक्त भगवान का दास है तो इसका अभिप्राय ये नहीं कि वह भगवान की ताड़ना अर्थात् दण्ड का अधिकारी हो जाता है बल्कि इसका अभिप्राय है कि वह ईश्वर की करुणा का, तारन का, त्राण का अधिकारी हो गया है, ऐसा माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि तुलसीदास जी ने नारी को तारन का अधिकार कहा है। ताड़न शब्द तारन के स्थान पर प्रक्षिप्त हो गया है। वैसे भी हिंदी की 'र' 'ड़' में और 'ड़' 'र' में स्थान-स्थान पर परिवर्तित हो जाता है।

इस विषय को अब रामचरितमानस में तुलसीदास जी के नारी जाति के प्रति दृष्टिकोण पर विचार करते हैं। बालकाण्ड (121) में भगवान श्रीराम के जन्म लेने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए तुलसीदास कहते हैं कि ागवान श्रीराम असुरों को मारकर देवताओं को राज्य देते हैं और अपनी बाँधी हुए वेद मर्यादा की रक्षा करते हैं। यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि राम वेद मर्यादा का निरुपण करते हैं, अतः राम वेद मर्यादा के रक्षक सिद्ध हुए। वेद पत्नी की मर्यादा का निरूपण करते हुए स्पष्ट करता है- त्वं सम्राज्ञयेधि

पत्युरस्तं परेत्य (अथर्ववेद-14/1/43) अर्थात् पति के घर जाकर पत्नी घर की महारानी हो जाती है। पत्नी को गृहस्वामिनी कहने की परंपरा भारत में आज तक है। यह परंपरा वेद की ही देन है। सदियों से हम इस व्यवस्था में जी रहे हैं और इसे ही मान रहे हैं। पत्नी को गाँव में घरवाली भी कहा जाता है, उस शब्द का अर्थ भी गृहस्वामिनी ही मानना और जानना अभिप्रेत है। अथर्ववेद (14/1/27) में पति को पत्नी की अर्जित सपदा के उपभोग से निषिद्ध किया गया है। अतः वेद का निर्देश है कि पति ही पत्नी का पोषण करेगा। वह उसका अर्जित अन्न नहीं खाएगा। यदि तुलसी के राम इसी मर्यादा के रक्षक हैं तो उनके लिए नारी 'तारन' की अधिकारिणी ही सिद्ध होती है।

इसी क्रम में भगवान राम अहिल्या के तारक हैं, ताड़क नहीं। दशरथनंदन श्रीराम जी के साथ अहिल्या का जो प्रसंग आता है, यदि उसे सर्वथा उसी रूप में सत्य मान लिया जाए जिस रूप में उसका उल्लेख किया गया है तो भी राम नारी के तारक अर्थात् उद्धारक ही सिद्ध हुए। तुलसी का अभिप्राय भी अपने चरितनायक से नारी की ताड़ना कराना नहीं अपितु तारना कराना ही सिद्ध होता है। अहिल्या राम से कहती है-

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन
रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन
पाहि-पाहि सरनाहि आई।

अर्थात्- मैं अपवित्र स्त्री हूँ और आप जगत को पवित्र करने वाले, रावण के शत्रु और भक्तों को सुख देने वाले हैं। हे कमलनयन! हे संसार के दुख हरने वाले, मैं आपकी शरण में हूँ मेरी रक्षा कीजिए।

तुलसीदास ने नारी को समानित एवं गौरान्वित किया है। वे सभी नारियों को माता सीता के समान मातृवत दृष्टि से देखते हैं। उनके साहित्य में इसी सर्वांगपूर्ण दृष्टि से देखने की आवश्यकता है।

• • •

एक यहूदी अनपढ़ था और एक गाँव में रहा करता था। किसी ने उसे बता दिया था कि जिस दिन प्रायश्चित पर्व हो, उस दिन ूब अच्छा-अच्छा खाना खाना चाहिए और मिले तो शराब भी पीनी चाहिए। इसलिए जब अगला प्रायश्चित पर्व आया तो उससे एक दिन पूर्व ही उसने खूब डटकर खाया, शराब पी और नशे में धुत्त हो गया।

प्रातःकाल उसकी नींद टूटी तो उसने देखा कि उसका साथी तो प्रायश्चित पर्व की लगभग आधी प्रार्थना पूरी कर चुका है। उसे तो एक भी मंत्र याद न था, इसलिए उसे स्वयं पर भारी पश्चाताप हुआ। उसने सोचा कि यदि कल शराब न पीकर मंत्र याद किया होता तो कितना अच्छा होता। यह सोचकर वह बड़ा दुखी हुआ।

सबको प्रार्थना करते देखकर वह वहीं बैठ गया और वर्णमाला के अक्षरों का पाठ करता हुआ भावना करने लगा- हे प्रभु! मुझे तो कोई मंत्र याद नहीं। इन अक्षरों को दुहरा रहा हूँ। इनको जोड़कर तुम स्वयं ही मंत्र बना लेना। मैं तो तुहारा दास हूँ, पूजा के लिए नए भाव कहाँ से लाऊँ? जब तक दूसरे लोग प्रार्थना करते रहे, वह ऐसे ही ध्यान करता रहा। उसकी भावना देखकर धर्मगुरु रबी ने उसे सबसे आगे की पंक्ति में बिठा करके कहा- इसके पास शब्द नहीं है, पर भाव पर्याप्त हैं। भगवान तो भाव का ही भूखा है। वो इसी से संतुष्ट होगा।

तप साधना से होती है समाधि की प्राप्ति

ज्ञान की खोज में महावीर नंगे पाँव एक स्थान से दूसरे स्थान तक विचरण करते रहे। 12 वर्षों की घनघोर तपस्या के बाद अंततः उन्हें आत्मबोध हुआ। वर्षों की तपस्या व आत्मबोध से उनके चेहरे पर एक अलौकिक आभा व तेज उतर आया था। वे करुणा की साक्षात प्रतिमूर्ति लग रहे थे। उनका यश गौरव दिग-दिगन्त तक फैलने लगा था। उनके दर्शन पाने को और उनका शिष्यत्व ग्रहण करने को बहुतायत संया में लोग उमड़ने लगे थे। राजा प्रसेनजित महावीर के प्रचंड तप, यश, गौरव व याति से परिचित हो चुके थे। एक दिन वे भी भगवान महावीर के दर्शन पाने की लालसा लिये उनके पास पहुँचे।

महावीर के दीप्त, प्रदीप्त मुखमंडल व आभामंडल को देख राजा प्रसेनजित बड़े अचरज में थे। वे अपने सभी सेवकों के साथ भगवान महावीर के समुख नीचे जमीन पर बैठ गये और उन्हें नमन करते हुये बोले- हे प्रभु! आप जैसे परम तपस्वी का दर्शन पाकर आज मैं अपने आप को धन्य महसूस कर रहा हूँ। भगवन! मेरे पास वो हर चीज है जिसे कोई भी मनुष्य इस दुनिया में प्राप्त करना चाहता है।

राजा बोले- सुख के सारे साधन, धन-दौलत, समान, प्रेमपूर्ण परिवार, विशाल साम्राज्य ये सारी चीजें मेरे पास हैं और ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। अब कुछ और पाने की मेरी कोई आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा भी नहीं रही लेकिन फिर भी जब मैंने आपके तप और ज्ञान के बारे में सुना तो मुझे ऐसा लगा मानो सारे सुख साधन, सुख वैभव, विशाल साम्राज्य का मालिक होते हुये भी मैं अपूर्ण हूँ, अधूरा हूँ। हे भगवन! मैंने सुना है कि आत्मज्ञान, समाधि जैसी कोई दुर्लभ चीज प्राप्त कर ली है। क्या मैं भी इसे प्राप्त कर सकता हूँ? मैं इसके लिये कोई भी कीमत चुकाने को तैयार हूँ।

महावीर मुस्कुराये और बोले- वत्स! सचमुच इस दुनिया में आत्मज्ञान या समाधि से बड़ी कोई दूसरी चीज नहीं है। भौतिक साधनों से तो सिर्फ भौतिक सुख, शरीर सुख की ही प्राप्ति हो सकती है पर आत्मिक सुख तो आत्मबोध, आत्मज्ञान, समाधि पा लेने के बाद ही संभव है। निसंदेह आपके पास अपार भौतिक सुख साधन हैं पर आत्मिक तृप्ति न होने के कारण ही आपके जीवन में भारी सूनापन और खालीपन है। बिना आत्मज्ञान के यह मनुष्य जीवन अधूरा है, अपूर्ण है।

राजा प्रसेनजित पुनः बोल पड़े- हे भगवन! आत्मज्ञान और समाधि को प्राप्त करने के लिये मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ। मैं इसके लिये भारी से भारी कीमत चुकाने को तैयार हूँ। हे प्रभु! मैं इसे कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? आप मेरी सहायता करें।

राजा की बात सुनकर महावीर मुस्कराये और बोले- यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, समाधि की अवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं तो आप अपने राज्य की राजधानी जायें जहाँ एक बेहद गरीब व्यक्ति रहता है। उसने भी समाधि की प्राप्ति कर ली है और गरीब होने के कारण हो सकता है वह आपको समाधि बेचना चाहे। इसलिये आप उसी के पास जाऐं। मुझसे अधिक वह गरीब व्यक्ति आपकी मदद कर सकता है। यह जानकर प्रसेनजित प्रसन्न हुये। वे महावीर को नमन करते हुये उस गरीब व्यक्ति की खोज में निकल पड़े। वे शीघ्र ही अपने सेवकों व सैनिकों के काफिले के साथ एक टूटी-फूटी झोपड़ी के सामने जाकर रुक गये।

सैनिकों ने आवाज लगाई और एक साधारण वेशभूषा में एक आदमी उस झोपड़ी से बाहर निकला। उस साधारण से दीखने वाले व्यक्ति के अंदर समाधि जैसी महान घटना घटी होगी यह अनुमान लगाना सामान्य व्यक्ति के लिये सचमुच कितना असंभव सा था परंतु सच तो यही है कि समाधि जैसी उच्चतम अवस्था को प्राप्त व्यक्ति की पहचान उसकी बाह्य दशा को देखकर नहीं की जा सकती है। सो उस साधारण गरीब व्यक्ति को देखकर राजा मन ही मन सोचने लगे, क्या इस साधारण और गरीब व्यक्ति ने समाधि की प्राप्ति कर ली है। क्या इसने सचमुच आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है।

राजा ने उस व्यक्ति से कहा- इन बैलगाड़ियों में अपार धन व हीरे जवाहरात भरे हैं। ये सब मैं तुहारे लिये ही लेकर आया हूँ। तुहें और भी चाहिये तो बोलो। तुम ये सब ले लो लेकिन इन सबके बदले तुम मुझे 'समाधि' दे दो।

वह गरीब राजा की बात सुनते ही भारी अचरज में पड़ गया। वह बोला- यह संभव नहीं है महाराज! लेकिन क्यों? प्रसेनजित चौंक कर बोले- ऐसा क्यों? बड़े ही शांत व निर्भीक भाव से उस गरीब व्यक्ति ने कहा- महाराज! समाधि कोई वस्तु नहीं जिसे खरीदा या बेचा जा सके। समाधि तो एक मनःस्थिति है जिसे निरंतर आध्यात्मिक अयास से ही प्राप्त किया जा सकता है। दुनिया की सारी दौलत देकर भी समाधि खरीदी नहीं जा सकती। आध्यात्मिक अयास से जब व्यक्ति काम, क्रोध, मोह, लोभ, राग-द्वेष आदि सभी विकारों व वासनाओं से मुक्त हो जाता है और उसका चित्त निर्मल हो जाता है, मन निर्मल हो जाता है तभी वह समाधि की उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर पाता है।

वह बोला- समाधि किसी से न तो जी जा सकती है न ही इसे किसी को दिया जा सकता है। इसे न तो खरीदा जा सकता है न ही बेचा जा सकता है। स्वयं के चित्त को, मन को निर्मल बना कर इसे स्वयं ही प्राप्त किया जाता है। हे महाराज! आप मेरे राजा हैं। मैं आपका समान करता हूँ। यदि आप समाधि प्राप्त करना चाहते हैं तो इसमें धन-दौलत, सैनिक-सेवक कोई काम नहीं आयेगें। आपको स्वयं ही स्वयं को निर्मल बनाना होगा।

राजा प्रसेनजित की आँखें खुल गईं। वे समझ गये कि समाधि कोई वस्तु नहीं जिसे खरीदा जा सके। इसे तो तप के बल पर ही प्राप्त किया जा सकता है। वे शीघ्र ही भगवान महावीर के पास वापस लौटे और उसी दिन से उनके शिष्य बन गये। सचमुच साधनों से नहीं तप साधना से होती है समाधि की प्राप्ति।

• • •

आचार्य श्वेताक्ष की युवा पत्नी अपने नवजात शिशु को छोड़कर परलोक सिधार गयी। श्वेताक्ष ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उसके सभी अंतिम संस्कार पूर्ण किये और आनन्दपूर्वक अपने शिशु का पालन-पोषण करते हुए अपने नित्य, नैमित्तिक कर्त्तव्यों में लग गये। यह महाघात उन्हें तनिक भी विचलित न कर सका। उनके मुख की प्रसन्नता व कान्ति यथावत बनी रही परन्तु क्रूर काल का कोप अभी थमा नहीं था। उनकी सपत्ति-समृद्धि का क्षय होने लगा। कुछ ही समय में ब्राह्मण श्रेष्ठ श्वेताक्ष कंगाल हो गये। उन्हें रोज का भोजन मिलना भी कठिन हो गया लेकिन अभी भी उनके जीवन में विपत्तियों के विषादी स्वर थमे न थे।

एक दिन अनायास ही उनकी इकलौती संतान नागदंश से मृत्यु को प्राप्त हो गयी। रोग भी उन्हें घेरने लगे परन्तु इन दारुण यातनाओं में भी वे अविचलित थे। दुःख के अनगिनत कारणों एवं घटनाक्रमों के बीच भी वे प्रसन्न थे। उनके एक घनिष्ठ मित्र ने उनसे प्रश्न किया कि- हे विप्र! आप इन विपन्नताओं-विषमताओं के बीच किस तरह प्रसन्न रहते हैं।

अपने उत्तर में वे पहले तो मुस्कराये, फिर कहने लगे- मित्र! इस सबका रहस्य मेरी प्रभु भक्ति में है। मैं अपने आराध्य से-उन सर्वेश्वर से इतना प्रगाढ़ प्रेम करता हूँ कि किसी तरह की घटनाएँ मुझे विचलित कर ही नहीं पातीं। सत्य यही है कि यदि ईश्वरनिष्ठा अटूट एवं प्रगाढ़ हो तो किसी भी तरह का सांसारिक कष्ट भक्त की भक्ति को विचलित नहीं कर पाता।

अस्वास्थ्यकर है बोतलबंद पानी

आजकल उत्सवों में पानी की बर्बादी सामान्य सी बात बन गयी है। भव्य आयोजन होता है। खाना शुरू करने से पहले हाथ धोने के लिए पानी की तलाश करने पर कहीं भी पानी नहीं मिलता, जहाँ हाथ धोए जा सकें। पानी की प्लास्टिक की बोतलें जरूर रखी जाती हैं। 200 मिली लीटर पानी से लेकर 2 लीटर पानी तक की प्लास्टिक की बोतलें पर्याप्त संया में कई काउंटरों पर सजी रहती हैं। जिसको हाथ धोने होते हैं, वह एक बोतल उठाता है, बोतल की सील तोड़ता है और हाथ पर कुछ पानी डालकर शेष पानी से भरी बोतल वहीं रखे बड़े-बड़े टबों में फेंक देता है।

टबों में ही नहीं, चारों तरफ ढेर लगा रहता है आंशिक रूप से प्रयुक्त पानी की उन बोतलों का। उनमें से निकल-निकल कर पानी चारों तरफ फैलता रहता है। आजकल हर जगह, कमोबेश यही स्थिति दिखलाई पड़ती है। पानी और पीने योग्य पानी का यह हश्र देखकर मन दुखी हो जाता है। क्या पानी की इस बर्बादी, इस नासमझी भरे उपयोग को रोका नहीं जा सकता? क्या हाथ धोने के लिए सामान्य स्वच्छ जल टूँटी लगे जग अथवा टंकियों में उपलब्ध नहीं कराया जा सकता?

यह असंभव कार्य नहीं लेकिन इसके संभव न होने के पीछे कई कारण हैं, जो भयंकर हैं। पेयजल का तो दुरुपयोग होता ही है, साथ ही प्लास्टिक की बोतलों का भी बेतहाशा इस्तेमाल किया जा रहा है। हाथ धोने हैं तो एक बोतल, कुल्ला करना है तो दूसरी बोतल, भोजन के लिए बीच में पानी पीना है तो तीसरी बोतल, भोजनोपरांत हाथ साफ करने हैं या पानी पीना है तो चौथी व पाँचवीं बोतल। इस तरह एक आदमी के लिए पाँच-सात बोतलों के पानी का दुरुपयोग करना सामान्य सी बात है। प्लास्टिक की बोतलों और गिलासों का प्रयोग करना न केवल पर्यावरण के लिए घातक है, बल्कि इस्तेमाल करने वालों के लिए भी अस्वास्थ्यकर है इसीलिए प्लास्टिक के उपयोग को लेकर जनसामान्य को हतोत्साहित किया जाना जरूरी है।

आज हर जगह प्लास्टिक की बोतलों व गिलासों में बंद पानी को प्रोत्साहित किया जा रहा है। आज प्लास्टिक की बोतलों और गिलासों पर कहीं भी रोक-टोक नहीं। प्लास्टिक की बोतलों और गिलासों में बंद पानी के प्रयोग को प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जा रहा है। प्लास्टिक, थर्मोकोल अथवा एल्युमीनियम फॉयल से निर्मित 'यूज एंड थ्रो' पात्रों को प्रतिष्ठा का प्रतीक बनाया जा रहा है। एक-एक आयोजन में कई-कई टैंपों या ट्रक भरकर प्लास्टिक की पानी की बोतलें व गिलास तथा प्लास्टिक, थर्मोकोल या एल्युमीनियम फॉयल से निर्मित 'यूज एंड थ्रो' काफी मात्रा में प्रयोग में लाए जाते हैं। आयोजन खत्म होते-होते इस घातक कचरे के ढेर लग जाते हैं। यह कचरा वजन में अत्यंत हल्का होता है इसलिए इधर-उधर उड़ता रहता है।

शहरों, कस्बों, गाँवों व समस्त पृथ्वी के सौंदर्य पर यह कचरा सचमुच कलंक के समान है। आज बड़े-बड़े शहरों में ही नहीं कस्बों और गाँवों तक में कूड़े का सही ढंग से निपटारा करना एक बड़ी समस्या हो गई है। कुछ आर्थिक और औद्योगिक विकास की आवश्यकता तथा कुछ बढ़ते बाजारवाद के कारण आज हमारे उपभोग की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। वस्तुओं की संया और मात्रा दोनों में बेतहाशा बढ़ोतरी हो रही है। 'यूज एंड थ्रो' संस्कृति के कारण स्थिति और भी भयावह होती जा रही है। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण संसाधनों का असीमित दोहन किया जा रहा है, जो हमारे परिवेश और प्राकृतिक संतुलन के लिए घातक है।

क्या प्लास्टिक, थर्मोकोल अथवा एल्युमीनियम फॉयल से निर्मित 'यूज एंड थ्रो' पात्रों की जगह धातु, चीनी मिट्टी या काँच के सुंदर व टिकाऊ, खाने-पीने में सुविधाजनक बर्तनों का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है? क्या उनकी जगह प्राकृतिक सामग्री जैसे पत्तों से निर्मित पत्तल और दोनों का प्रयोग संभव नहीं है? क्या पत्तों से निर्मित पत्तल और दोनों का प्रयोग परिवेश लिए अनुकूल व सुरक्षित नहीं है? क्या इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

संभव नहीं है? क्या इससे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में कमी के जरिए औद्योगिकीकरण के दुष्परिणामों को कम करना संभव नहीं है? क्या इससे अजैविक अथवा नष्ट न होने वाले कूड़े-कचरे के अंबार से मुक्ति संभव नहीं है?

कुछ भी असंभव नहीं, बशर्ते संतुलित दृष्टि और नेक इरादे से काम किया जाए। क्या प्लास्टिक की बोतलों या गिलासों में बंद पानी की जगह टोंटीवाले जगों या टंकियों में शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है? कराया जा सकता है लेकिन दो सौ, तीन सौ या अधिक से अधिक पाँच सौ रुपये के पानी के बीस, पच्चीस हजार रुपये तो नहीं बनाए जा सकते हैं। यह घोर बाजारवाद, औद्योगीकीकरण और व्यावसायीकरण का नतीजा है। जिसके कारण लगभग बिना कीमत वाले पानी जैसे पदार्थ को भी न केवल सौ गुना से ज्यादा कीमत पर बेचा जा रहा है अपितु पानी जैसे बेशकीमती पदार्थ की बर्बादी व प्रदूषण के स्तर में बेतहाशा वृद्धि हो रही है और लोगों के स्वास्थ्य से भी खिलवाड़ किया जा रहा है।

कई बार शुद्ध स्वच्छ जल या मिनरल वाटर के नाम पर जो बोतलबंद पानी परोसा जाता है, वास्तव में वह पीने के योग्य भी नहीं होता है। उसमें से न केवल दुर्गन्ध आती है, बल्कि कई बार उसमें खारापन या एक अजीब सा स्वाद होता है। शुद्ध स्वच्छ जल तो गंधहीन, रंगहीन व स्वादहीन तथा पारदर्शी होता है। शुद्ध जल या मिनरल वाटर के नाम पर प्रायः बोतल में बंद ऐसा पानी होता है, जिसकी गुणवत्ता का कोई भरोसा नहीं है। कई बार सीधे जमीन का कच्चा पानी, जो पीना तो दूर दूसरे प्रयोग के लिए भी उचित नहीं होता, बोतलों में भर दिया जाता है। यह न केवल लोगों के स्वास्थ्य से खिलवाड़ है, बल्कि अनैतिकता और बेईमानी भी है। यह पानी का ही नहीं, अन्य संसाधनों का भी दुरुपयोग है और प्रकृति व पर्यावरण के प्रति लापरवाही ही नहीं वरन् एक गंभीर अपराध भी है। देश में ही नहीं पूरे विश्व में पर्यावरण की स्थिति लगातार बद से बदतर होती जा रही है।

ऐसे में हमारे लिए अपने उपभोग को सीमित और नियंत्रित करना ही नहीं, अपने उपभोग की दशा-दिशा को बदलना भी जरूरी लगता है। यह हर तरह से हमारे हित में ही होगा। वस्तुओं का सही और संतुलित प्रयोग ही नहीं, पुनर्प्रयोग भी समय की माँग है। जल का विवेकपूर्ण उपयोग तो और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जल और दूसरे संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग में ही निहित है प्रकृति का बचाव और पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति। यह तभी संभव है जब हम अपने व्यवहार के साथ-साथ अपनी मानसिकता को बदलकर उसे भी अधिकाधिक संतुलित और सकारात्मक बनाएँ। जल देवतुल्य है। इसका समान करना चाहिए और इसके सदुपयोग एवं संरक्षण का प्रयास करना चाहिए।

• • •

एक प्रोफेसर को एक गुण्डे ने रास्ता चलते चपत मारी। वे धर्मग्रंथों में दी गयी अहिंकसा की शिक्षाओं पर विश्वास करते थे, इसलिए उन्होंने दूसरा गाल भी आगे कर दिया। गुंडे ने दूसरे गाल पर उससे भी जोर की चपत मारी। वह तीसरी चपत जड़ने ही वाला था कि प्रोफेसर ने उसे धर दबोचा और उसकी हड्डी-पसली तोड़कर रख दी।

लोगों के पूछने पर प्रोफेसर ने बताया कि धर्मग्रंथों में दो चपत खाने तक की बात लिखी है। तीसरी चपत लगने पर उसका प्रतिरोध कैसे किया जाए? यह मनुष्य के अपने विवेक पर छोड़ दिया गया है। एक ही सिद्धान्त विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न ढंग से प्रयुक्त होता है।

तनाव प्रबंधन का सुगम मार्ग

तनाव किसी भी परिस्थिति आने पर व्यक्ति के तन-मन की प्रतिक्रिया है, जिसमें शरीर से स्ट्रेस हार्मोन स्रावित होते हैं, जो व्यक्ति को चुनौती का सामने करने के लिए आवश्यक सजगता, तत्परता, एकाग्रता एवं तैयारी की अवस्था में लाते हैं। इस तरह तनाव परिस्थितियों का सामना करने के लिए मनःस्थिति की तैयारी की अवस्था है, जिसके आधार पर व्यक्ति चुनौतियों के पार होता है।

इस तरह तनाव जीवन का एक सकारात्मक तत्व कहा जा सकता है लेकिन जब यही तनाव अधिक समय तक बना रहता है, तो यह नकारात्मक बन जाता है। वैज्ञानिक शोध के आधार पर स्पष्ट हो चुका है कि तनाव के साथ एक बिंदु तक कार्यक्षमता बढ़ती जाती है, लेकिन चरम बिंदु के बाद फिर इसका शरीर एवं मन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना प्रारभ हो जाता है तथा कार्यक्षमता में ह्रास आना शुरु हो जाता है।

ऐसे में तनाव के हानिकारक प्रभाव व्यक्ति के तन, मन, व्यवहार एवं जीवन में प्रकट होना शुरु हो जाते हैं। कार्य में एकाग्रता प्रभावित होने लगती है, स्मृति का लोप होना शुरु हो जाता है, निर्णय लेने की क्षमता कुंद पड़ने लगती है तथा कार्य को टालने की प्रवृति बढ़ जाती है। पेट एवं सर में दर्द हो सकता है, भूख कम लगती है या व्यक्ति अधिक खाने लगता है। व्यक्ति अनिद्रा का शिकार भी हो जाता है। व्यवहार में चिड़चिड़ेपन एवं क्रोध के लक्षण प्रकट होते हैं या व्यक्ति एकदम अलग-थलग पड़ जाता है। किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति आ सकती है। भय, उद्विग्नता, हताशा, निराशा, चिंता एवं अवसाद जैसे मनोविकार हावी होने लगते हैं। ऐसा व्यक्ति परिस्थिति का सामना करने का साहस नहीं कर पाता।

ऐसे में व्यक्ति नशे की गिरत में आ सकता है तथा नींद के लिए गोली का सहारा लेने लगता है। शरीर का ऊर्जा स्तर गिर जाता है, व्यक्ति थका-हारा अनुभव करता है और व्यक्ति की कार्यक्षमता गिर जाती है। धीरे-धीरे शरीर में इसके दुष्प्रभाव नाना प्रकार के मनोकायिक रोगों के रूप में प्रकट होना शुरु हो जाते हैं, यथा - अल्सर, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मोटापा या दुबलापन, मधुमेह, अस्थमा, माईग्रेन आदि।

जीवन में तनाव के कई कारण हो सकते हैं। मोटे तौर पर इन्हें परिस्थितिजन्य एवं मनःस्थितिजन्य दो हिस्सों में हम बाँट सकते हैं। जीवन में कई परिस्थितियाँ गहरे तनाव का कारण बनती हैं। किसी का वियोग, विछोह एवं मृत्यु, सबन्धविच्छेद, तलाक, सेवानिवृति, बेरोजगारी, जीर्ण रोग, प्रसव, आपसी क्लह-कलेश, अर्थिक तंगी, दिनचर्या में व्यवधान जैसी नकारात्मक परिस्थितियाँ सघन तनाव देती हैं। इसके साथ शादी, पदोन्नति, आकस्मिक सफलता, लॉटरी जैसी आकस्मिक अनुकूलताऐं भी तनाव का कारण बनती हैं। तनाव के इन परिस्थितिजन्य कारणों का सीधा कोई समाधान नहीं होता। व्यक्ति अपनी मानसिक क्षमता के अनुसार इनका सामना करता है, बाकि समय के साथ इनका प्रभाव हल्का होने लगता है और एक समय के बाद फिर इनसे उबर जाता है। अतः इसे एक तरह से कालसापेक्ष तनाव कह सकते हैं।

ऐसे लोगों के अतिरिक्त मनःस्थिति से जुड़े तनाव के आंतरिक कारक व्यक्ति की पकड़ में होते हैं, जो प्रायः व्यक्ति की बिगड़ी जीवन शैली, सोचने की गलत पद्धति एवं भ्रमित दृष्टिकोण के कारण विकराल रूप लिए होते हैं। ऐसे में दैनन्दिन जीवन के तनाव अधिकाँशतः व्यक्ति की अपनी उपज होते हैं। बिगड़ी जीवनशैली, लक्ष्य की स्पष्टता का अभाव, कार्यों में प्राथमिकता का निर्धारण न हो पाना, अस्त-व्यस्त दिनचर्या, अति महत्वाकाँक्षा, अनावश्यक प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्या-द्वेष आदि जीवन को नकारात्मक तनाव से ग्रस्त कर देते हैं और इसे बोझिल बनाते हैं। इनको दुरुस्त कर व्यक्ति अपनी तनाव से पार होने की क्षमता बढ़ा सकता है। इस संदर्भ में तनाव प्रबन्धन के लिए निन बातों का ध्यान रखा जा सकता है -

1- तनाव के कारण की समीक्षा करें, इसकी तह तक जाऐं। कारण समझ आने पर फिर छोटे-छोटे कदम उठाते हुए इससे पार निकलने का प्रयास करें।

2- आहार, निद्रा, विश्राम एवं व्यायाम को उचित स्थान दें। ऐसा आहार जो तन-मन को उत्तेजित न करता हो, शांत रखता हो,

ग्राह्य रहता है। नींद अपनी आवश्यकता के अनुरूप 6 से 8 घण्टे की ली जा सकती है। नियमित किसी रूप में व्यायाम का समावेश तनावरोधी तन्त्र को सशक्त बनाता है।

3- मल्टीटास्किंग से बचें, एक समय एक काम करें। क्योंकि एक साथ कई कार्य तनाव का कारण बनते हैं, जब कोई भी कार्य सही ढ़ंग से नहीं हो पाता, तो कार्य का असंतोष तनाव को जन्म देता है। एक समय पर एक काम करने से तनाव से पार पाया जा सकता है।

4- अच्छी संगत का तनाव निवारण में अपना महत्व रहता है। मोबाइल फोन आज गलत संगत एवं तनाव का एक बड़ा कारण बना चुका है, जिसका संयत एवं सही उपयोग कर अनावश्यक तनाव से बचा जा सकता है। ऐसे ही सकारात्मक लोगों की संगत जीवन को सुखद बनाती है।

5- आपसी सबन्धों को मजबूत रखें। घर-परिवार में अच्छे सबन्ध भावनात्मक सबल देते हैं। ऐसे में व्यक्ति की तनावरोधी क्षमता बढ़ती है व व्यक्ति हँसते हुए जीवन की चुनौतियों का सामना करता है।

6- लक्ष्य की स्पष्टता जीवन को सफल तथा इच्छाओं की कमी- व्यक्ति को सुखी बनाते हैं जबकि अति महत्वाकाँक्षा व्यक्ति के असंतोष का कारण बन तनाव देती है। महत्वाकांक्षाओं को कम कर, सादा जीवन उच्च विचार के आदर्श का अनुकरण करते हुए जीवन को सरल एवं तनावशून्य बनाया जा सकता है।

7- कार्यों को प्राथमिकता के आधार पर पूरा करना उचित रहता है। इससे अंतिम समय की अनावश्यक अस्त-व्यस्तता एवं तनावपूर्ण स्थिति से निजात मिलती है अन्यथा तनाव व्यक्ति की नियति बन जाता है। परीक्षा के समय में इस नियम का पालन न करने के कारण कितने छात्र-छात्राओं को तनावग्रस्त अवस्था में हैरान-परेशान देखा जा सकता है।

8- अपनी सीमाओं को जानें व ना करना सीखें। यह सुनिश्चित है कि एक व्यक्ति सब कुछ नहीं कर सकता और न ही सबको खुश कर सकता है। अपनी सीमाओं को जानते हुए ना करने की कला व्यक्ति को अनावश्यक दबाव एवं तनाव से मुक्त रखती है।

9- नकारात्मक लोगों से दूर ही रहें। कुछ व्यक्ति नकारात्मकता का चलता-फिरता पिटारा होते हैं। ऐसे लाईलाज लोगों को दूर से ही प्रणाम करें। यदि कुछ व्यवहार करना पड़े, तो न्यूनतम मर्यादा का निर्वाह करते हुए सजग व्यवहार करें। इनसे किसी भी रूप में उलझना भारी तनाव को निमन्त्रण देना साबित हो सकता है।

10- अपने लिए समय निकालें, आत्मसमीक्षा करें, स्वाध्याय सतसंग, प्रेरक साहित्य को पढ़ें। इससे तनाव के मूल तक जाने की विवेक-बुद्धि विकसित होती है व इसके निराकरण के उपाय भी सूझते हैं। यहाँ तक कि भारी तनाव के बीच भी रचनात्मक जीवन के पुत्र समझ आते हैं।

11- नियमित डायरी का लेखन तनाव को कम करने का एक प्रभावशाली उपाय रहता है। दिन भर के गुबार को डायरी में उतारने पर मन हल्का हो जाता है। इसी विशेषता के कारण मनोवैज्ञानिक केथारसिस अर्थात् विरेचन के रूप में डायरी लेखन का भी उपयोग करते हैं।

12- प्रकृति का संग साथ तनाव के निवारण का एक सरल एवं सहज उपाय है। प्रकृति के सान्निध्य में व्यक्ति को प्रशांतक स्पर्श मिलता है। अतः बीच-बीच में अकेले या परिवार के साथ प्राकृतिक परिवेश में टहलना या ट्रेकिंग एक लाभकारी प्रयोग रहता है।

तनाव निवारण के लिए ध्यान की आध्यात्मिक विधि को भी अपनाया जा सकता है। यदि ध्यान न लगता हो तो प्रार्थना का सर्वसुलभ उपाय कभी भी, कहीं भी आजमाया जा सकता है। अपने इष्ट आराध्य या सद्गुरु से अपने भाव निवेदन के साथ मन का भार हल्का हो जाता है।

• • •

यह दुनिया किसी को उच्च स्थान और समान देने से पूर्व यह परखना चाहती है कि वह आदर्श की रक्षा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का सामने करते हुए अपने खरेपन का प्रमाण किस सीमा तक दे सकता है?

धुंधकारी प्रेत की मुक्तिगाथा

श्रीमद्भागवत पुराण में कई रोचक कथाओं का वर्णन है। धुंधकारी के प्रेत बनने और प्रेतयोनि से मुक्त होने की कथा भी उन्हीं में से एक है, जो रोचक भी है और प्रेरणादायी भी।

कथा के अनुसार दक्षिण भारत की तुंगभद्रा नदी के तट पर बसे एक गाँव में आत्मदेव अपनी पत्नी धुन्धुली के साथ रहते थे। आत्मदेव वेदों के ज्ञाता थे और उनके घर में सब प्रकार का सुख भी था पर संतानसुख प्राप्त न होने के कारण वे दुःखी रहा करते थे। उनकी पत्नी धुन्धुली स्वभावतः बहुत ही क्रूर और झगड़ालू किस्म की थी। इस कारण घर में अक्सर कलह-क्लेश का वातावरण बना रहता था।

उम्र ढलती जा रही है और अब तक संतान का मुख देखने को नहीं मिला, यह सोच-सोचकर आत्मदेव और भी अधिक दुखी हो जाया करते थे। इसी दुःख के आवेश में आकर एक दिन वे आत्महत्या करने के विचार से घर से निकल पड़े। वे बड़ी तेजी से एक वन से होकर गुजर रहे थे। वन में स्थित एक तालाब को देखकर वे रुक गये और उसी तालाब में कूदकर अपनी जान देने को तत्पर हुये। वे कूदने ही वाले थे कि तभी उनके कानों में आवाज सुनाई पड़ी- वत्स! तुम आत्महत्या मत करो। आत्महत्या महापाप है। यह दुर्लभ मानव तन आत्महत्या के लिये नहीं बल्कि भगवद्प्राप्ति जैसे जीवन के परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिये मिला है। आत्महत्या कर तुम तो अनंतकाल तक प्रेतयोनि में भटकते हुये और भी दारूण दुःख पाओगे।

यह सुनते ही आत्महत्या के लिये उठे आत्मदेव के कदम रुक गये, ठिठक गये। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि सामने ही आध्यात्मिक तेज से दीप्त, प्रदीप्त एक सिद्ध महात्मा खड़े हैं। महात्मा जी ने बड़े प्यार से पूछा- वत्स! तुहें ऐसा कौन सा दुःख है जिसके कारण तुम आत्महत्या जैसे भीषण पाप करने जा रहे थे।

उन महात्मा की प्रेमभरी और ज्ञान से भरी बातें सुनकर आत्मदेव उनके चरणों से लिपट गये और बिलखते हुये उन्हें अपनी सारी व्यथा बताई। महात्मा जी ने कहा- वत्स! वैसे तो तुहारे भाग्य में संतान का सुख नहीं है परंतु तुहारी दशा देखकर मैं द्रवित हूँ और अपनी तपशक्ति के एक अंश के रूप में मैं तुहें एक फल दे रहा हूँ।
इतना कहते ही महात्मा जी ने अपनी झोली से एक फल निकालकर उन्हें दिया और कहा- तुम यह फल अपनी पत्नी को खिला देना। इससे उसे एक पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी।

महात्मा जी के आशीर्वादस्वरूप उस फल को पाकर आत्मदेव बड़े प्रसन्न हुये और हर्षित मन से अपने घर की ओर वापस चल दिये। घर पहुँचते ही आत्मदेव ने अपनी पत्नी को बुलाया और उसे फल देते हुये कहा कि इसे स्नान करने के पश्चात् खा लेना। इससे तुहें पुत्र की प्राप्ति होगी।

दुर्बुद्धिवश धुन्धुली ने सोचा कि यदि मैंने फल खा लिया और गर्भवती हो गई तो मुझे नौ महीने तक गर्भ ढोते हुये बहुत ही कष्ट होगा। मैं ठीक से न तो खा पाऊँगी और न ही विश्राम कर पाऊँगी। मैं मर भी सकती हूँ। वह फल नहीं खाने को लेकर उसने आत्मदेव के साथ काफी तर्क-कुतर्क किया किंतु अंततः आत्मदेव के कहने पर उसने वह फल अपने पास रख लिया। इसी बीच एक दिन धुन्धुली की बहन जो गर्भवती थी, उसके घर आयी। धुन्धुली उसे अपना दुःखड़ा सुनाते हुए कहने लगी कि मैं किसी भी तरह यह फल नहीं खाना चाहती।

तब उसकी बहन ने कहा कि मेरे गर्भ में जो बच्चा है उसे जन्मते ही मैं तुझे दे दूँगी। तब तक तुम गर्भवती होने का अभिनय करते हुये घर में ही रहो। मैं कह दूँगी कि मेरा बच्चा मर गया था किंतु हाँ! तुम यह फल अपनी गाय को खिला दो। आत्मदेव की पत्नी ने अपनी बहन की बातें मानकर ऐसा ही किया। उसने फल को अपनी बाँझ गाय को खिला दिया।

कुछ समय के अंतराल पर उसकी बहन ने अपने घर में एक बच्चे को जन्म दिया और अपने बच्चे को धुन्धुली को लाकर दे दिया। धुन्धुली ने उस बच्चे का नाम धुंधकारी रखा। उसके तीन महीने बाद एक दिन सुबह जब आत्मदेव अपनी बाँझ गाय को चारा देने गये तो उन्होंने

देखा कि उनकी गाय ने एक ऐसे बच्चे को जन्म दिया है जो मनुष्य की आकृति का है। बस सिर्फ उसके कान ही गाय के समान थे। यह देखकर आत्मदेव को आश्चर्य भी हुआ और आनंद भी। वह उस बच्चे को उठाकर घर में ले गये और उसका नाम गोकर्ण रखा।

अब उनके घर में दो बच्चे हो गये, एक धुन्धकारी और दूसरा गोकर्ण। दोनों बच्चों की प्रकृति में काफी असमानता थी। गोकर्ण बचपन से ही दिव्य-संस्कारों से भरे-पूरे थे तो वहीं धुन्धकारी बचपन से ही दुर्गुणों, अवगुणों और कुसंस्कारों से भरे हुये थे। गोकर्ण स्वभावतः भगवद्नाम सुमिरन, भजन, ध्यान में डूबे रहते तो वहीं धुन्धकारी दुष्कर्मों में संलग्न रहते।

दिव्य संस्कारों व अपने भगवद्प्रेम के कारण गोकर्ण बड़े होकर भगवद्भक्त एवं विद्वान बने तो वहीं धुंधकारी बड़े होकर दुष्ट, दुराचारी, व्यभिचारी, क्रोधी और चोर हो गये। जब घर में धुन्धकारी जैसा पुत्र हो तो माता-पिता का हर पल नरक-सदृश ही बीतता है। धुन्धकारी ने अपने माता-पिता को निरंतर सताना शुरू कर दिया।

एक दिन तो उन्होंने अपने पिता को पीट-पीटकर घर से ही बाहर निकाल दिया। आत्मदेव बिलखते हुए सोचने लगे कि धुन्धकारी जैसा पुत्र होने से तो मेरा निःसंतान होना ही अच्छा था। मेरी पत्नी का बांझ होना ही अच्छा था। तभी गोकर्ण वहाँ आये और अपने पिता को सान्त्वना देते हुये कहने लगे- पिताजी! इस संसार में ईश्वर के अलावा कोई किसी का अपना नहीं होता है। ये सारे रिश्ते तो मनुष्य के शरीर से उपजे हैं, ये रिश्ते शरीर की तरह ही क्षणभंगुर और नाशवान हैं परंतु मनुष्य की आत्मा तो स्वयं परमात्मा का ही अंश है इसलिये मनुष्य का असली रिश्ता परमात्मा से ही है, भगवान से ही है।

वे बोले- आप वन जाकर भगवान का भजन, सुमिरन, ध्यान करें। इसी में आपका उद्धार है। भगवद्भजन, ध्यान ही मनुष्य का और मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा धर्म है। अपने भगवद्भक्त पुत्र की बातें सुनकर आत्मदेव तप करने वन को चले गये। इधर धुंधकारी के अत्याचार बढ़ते ही गये। वे अपनी माँ धुन्धुली को भी सताते रहते। एक दिन धुन्धुली ने दुःखी हो कुँए में कूद कर आत्महत्या कर ली।

अब धुंधकारी वेश्यावृत्ति, नशा, व्यभिचार, चोरी आदि में आकंठ डूब गया। कई वेश्यायें उसके साथ रहतीं और उसे अपने तरीके से संचालित करतीं। धुन्धकारी उन वेश्याओं के लिये धन जुटाता और धन के लिये वह इधर-उधर चोरियाँ किया करता था।

एक दिन उसके साथ रह रही वेश्यायों ने सोचा कि यदि धुंधकारी चोरी करते हुये पकड़ा गया तो उसके साथ हम लोगों को भी सजा मिल सकती है। राजा उन्हें भी दंडित कर सकता है। यह सोचकर उन सभी ने धुन्धकारी को जान से मारने की योजना बनायी। उन सभी ने मिलकर सोये हुये, धुंधकारी के गले में रस्सियों का फंदा डालकर, गला दबाकर मारने का प्रयास किया परंतु गला दबाने से भी वे नहीं मरे।

यह देखकर अब वेश्याऐं उन्हें मारने का कोई दूसरा उपाय ढूँढने लगीं। इस बार उन सभी ने मिलकर उन्हें दहकते अंगारों में डाल दिया। उन्होंने अंगारों में तड़प-तड़प कर अपना दम तोड़ दिया। ठीक ही कहा गया है जैसी करनी-वैसी भरनी। मनुष्य को अपने किये गये कर्मों का फल एक न एक दिन अवश्य ही भोगना पड़ता है। धुन्धकारी के साथ भी अंततः यही हुआ। जब उन्होंने दम तोड़ दिया तो उनके शरीर के अवशेष को वेश्याओं ने गड्ढा खोदकर उसमें गाड़ दिया।

मरने के बाद धुन्धकारी जीवनभर दूसरों को भयंकर दुःख देने, व्यभिचार करने, अत्याचार करने, चोरी करने जैसे अपने बुरे कर्मों के कारण प्रेत बन गये। प्रेतयोनि में रहते हुए उसे दारुण दुःख झेलना पड़ा। वे भूख और प्यास के मारे व्याकुल हो इधर-उधर तड़पते-भटकते रहे। वे रह-रहकर चिल्लाते भी रहते क्योंकि अंगारों से जलकर मरने के कारण, अंगारों में जलने की अनुभूति उनके सूक्ष्म शरीर में भी घर कर गयी थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि मानो अभी भी उनका शरीर अंगारों के बीच पड़ा जल रहा है और वे उसी दर्द की अनुभूति अभी कर रहे हैं जैसे उन्होंने शरीर के जलते समय की थी।

उधर गोकर्ण जगह-जगह भ्रमण कर, लोगों को भागवतकथा सुनाकर धर्म के मार्ग पर, ईश्वर के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दिया करते। एक दिन वे अपने घर आये। अपने गाँव में अभी-अभी कथा करके आये गोकर्ण घर आकर कुछ विश्राम करने लगे। उधर धुन्धकारी भी प्रेतयोनि में उसी घर में रह रहे थे। जब उन्होंने देखा

कि गोकर्ण भी उस घर में आकर सो रहे हैं तब उन्हें देख वे बहुत खुश हुए। भगवद्परायण, धर्मपरायण जीवन जीने वाले गोकर्ण को ऐसा लगा मानो किसी संकट में पड़ी कोई जीवात्मा उन्हें पुकार रही है।

उन्हें ऐसा लगा मानो कोई उन्हें आवाज दे रहा हो। तभी गोकर्ण उस आवाज को सुनकर पूछने लगे- इस घर में ऐसा कौन है जो अदृश्य रूप में मुझे पुकार रहा है? तभी धुन्धकारी ने कहा- भैया! मैं तुहारा भाई धुन्धकारी बोल रहा हूँ। मैं प्रेतयोनि में हूँ। मेरे कुकर्मों की गिनती नहीं की जा सकती है। जीवित रहते हुये मैंने अगणित पापकर्म किये थे। इसी से आज मैं प्रेतयोनि में पड़ा अपने पापों का फल भुगत रहा हूँ। मेरे भाई! तुम मुझ पर दया करो और मुझे प्रेतयानि से मुक्त कराओ। यह सुन कर गोकर्ण ने कहा- मैंने तो तुहारे लिये विधिपूर्वक गया में श्राद्धकर्म कर दिया था फिर भी तुम प्रेतयोनि से मुक्त नहीं हो पाये।

उसकी आकुल पुकार सुन गोकर्ण द्रवित हुये और कहा- मैं तुहारी मुक्ति के लिये पुनः कोई दूसरा उपाय करता हूँ। तब गोकर्ण ने उसकी मुक्ति के लिये श्रीमद्भागवत कथा प्रारंभ की। गाँव से बहुत से लोग वहाँ कथा सुनने आये। तभी धुंधकारी का प्रेत भी कथा सुनने के लिये इधर-उधर स्थान ढूँढने लगा। उसकी नजर कथास्थल के पास ही सीधे रखे हुये सात गाँठ वाले एक बाँस पर पड़ी। वह सूक्ष्मरूप में जाकर उसी बाँस पर बैठ गया। कथा में कौतुहलवश लोगों की भारी भीड़ जमा थी।

भगवद्परायण गोकर्ण ने अपने पवित्र अंतःकरण से भागवत कथा आरंभ की। भागवत कथा का प्रभाव तभी पैदा होता है जब कथावाचक का, स्वयं का जीवन स्वच्छ हो, अंतःकरण पवित्र हो और हृदय में भगवद्प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही हो। ऐसे अंतःकरण वाले, सत्यनिष्ठ जीवन जीने वाले व्यक्ति के द्वारा यदि भगवान की कथा की जाय और सुनी अथवा सुनाई जाये तो निश्चित ही उसका व्यापक प्रभाव, परिणाम पैदा होता है। जिससे सुनने-सुनाने वाले दोनों का कल्याण होता है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा की गई कथा से, आकुल पुकार में भगवान को द्रवित होना ही पड़ता है, अपनी कृपा बरसानी ही पड़ती है क्योंकि भगवान तो भक्तवत्सल हैं। किसी सच्चे भक्त की पुकार वे अनसुनी नहीं कर सकते।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने इस संबंध में कितना सुन्दर कहा है- "ईश्वर का प्यार केवल सदाचारी और कर्त्तव्यपरायणों के लिये ही सुरक्षित है। देवता हमारी पुकार और प्रार्थना तभी अनसुनी करते हैं, जब हम ईश्वर की पुकार को अनसुना करते हैं। जब हम ईश्वर के अनुशासन को अनसुनी करते हैं, जब हम ईश्वर के बताये मार्ग पर न चलकर अधर्म के मार्ग पर चलने लगते हैं। ऐसी स्थिति में ही देवता या भगवान हमारी पुकार व प्रार्थना भी अनसुनी कर देते हैं।"

गोकर्ण का हृदय तो भगवद्प्रेम से ओतप्रोत था। उनका चित्त परम पावन था फिर ऐसे सुपात्र के द्वारा धुन्धकारी की मुक्ति के लिये की गई प्रार्थना-पुकार प्रभु अनसुनी कैसे कर सकते थे? कथा प्रारंभ हुई। जब शाम को प्रथम दिवस की कथा समाप्त हुई तो एक विचित्र घटना घटी। जिस बाँस पर प्रेत बैठा था उस बाँस की एक गाँठ तड़-तड़ करती फट गई। इसी प्रकार सात दिनों में उस बाँस की सातों गाँठें, एक-एक करके फटती चली गईं और उस पावन कथा के श्रवण से, मनन से पवित्र होकर धुंधकारी प्रेतयोनि से मुक्त हो गए। उन्होंने एक दिव्यरूप धारण कर सबके समक्ष प्रकट हो अपने भाई को प्रणाम किया और वे अदृश्य हो गए। वे सदा-सदा के लिए मुक्त हो गए।

वास्तव में कथाश्रवण तो हजारों लोग करते हैं पर कथा का प्रभाव व्यक्ति के जीवन में तभी पैदा होता है जब श्रोता स्थिर चित्त से मनन करता हुआ कथाश्रवण करता है, मनन करता है फिर निदिध्यासन अर्थात् अपने जीवन के पग-पग पर कथा में कही गई बातों पर चलता है, ईश्वरीय आदर्श व अनुशासन को अपने जीवन में जीने लगता है।

धुन्धकारी ने भी बड़े ही मनोयोग से स्थिर चित्त से कथा का श्रवण भी किया था और मनन भी, इसलिये वे मुक्त हो गए। वहाँ रखे बाँस की सात गाँठों का क्रमशः टूटते जाना इस बात का द्योतक है कि मनुष्य के अंदर भी काम, क्रोध, मद, मोह, दंभ, दुर्भाव, द्वेष आदि वासना की सात गाँठें हैं। जब तक व्यक्ति इन गाँठों के बंधन में है तब तक वह मुक्त नहीं हो सकता है, मुक्ति और मोक्ष का अधिकारी वह नहीं हो सकता है परंतु जब ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि विभिन्न योगसाधनों के अभ्यास से साधक के अंदर की ये गाँठें क्रमशः टूटती चली जाती हैं, तब वह निश्चय ही भगवद्कृपा प्राप्त करके रहता है। वह आनंद और आलोक का अनुगामी बन जाता है। वह सदा-सदा के लिये मुक्त हो जाता है। •

मन की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाऐं

स्वस्थ रहने के लिए शरीर व मन की रोगप्रतिरोधक क्षमता का मजबूत होना बहुत जरूरी है, और यह भी जरूरी है कि हमारे शरीर व मन की रोगप्रतिरोधक क्षमता लगातार बढ़ती रहे, किसी भी स्थिति में यह कमजोर न पड़ने पाए क्योंकि यदि शरीर व मन की रोग प्रतिरोधक क्षमता में किसी भी स्थिति में कमी आती है, तो हमारा तन व मन आसानी से रोगों से ग्रसित होने लगते हैं।

हमारे आसपास कई तरह के रोगाणु जैसे-हानिकारक जीवाणु व विषाणु होते हैं, जो वहाँ आसानी से पनपने लगते हैं, जहाँ पर उन्हें पनपने का अवसर होता है। जब किसी भी कारण से शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता कम होने लगती है, तो इन रोगाणुओं के पनपने के अवसर बढ़ जाते हैं और फिर ये रोगाणु हमें रोगग्रस्त कर देते हैं। इसी तरह से हमारे चारों ओर के सूक्ष्म वातावरण में नकारात्मक व दूषित विचार घूमते रहते हैं तथा जैसे ही हमारी मन की प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है, वैसे ही ये नकारात्मक विचार हम पर हावी होने लगते हैं और फिर इन विचारों के कारण मन शंका, भय, विषाद, अवसाद व निराशा की ओर बढ़ने लगता है, नकारात्मक विचार मन को सकारात्मक सोचने नहीं देते और इनके कारण व्यक्ति सदैव निराशापूर्ण ढंग से ही सोचता है। इस सोच का परिणाम यह होता है कि जीवन से उत्साह, उमंग व प्रसन्नता विलीन हो जाती है और व्यक्ति धीरे-धीरे मनोरोगों के जाल में उलझता चला जाता है।

शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए हम सतत जागरुक रहते हैं, लेकिन मन की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने की ओर हमारा ध्यान नहीं जा पाता, जबकि शरीर व मन की प्रतिरोधक क्षमता आपस में एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसी कारण शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम होने पर वह मन को भी कमजोर करती है और मन की प्रतिरोधक क्षमता कम होने पर वह शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को भी बुरी तरह से प्रभावित कर देती है।

वर्तमान में कोरोना वायरस पूरे विश्व में एक चुनौती बनकर उभरा हुआ है। इससे बचने के लिए हमारे समुख बस दो ही उपाय हैं। एक- कोरोना वायरस से बचाव हेतु जरूरी सावधानियाँ रखना। दूसरा- शरीर व मन की प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाए रखना। यहाँ पर बात केवल कोरोना वायरस से बचने की नहीं है, बल्कि किसी भी प्रकार के संक्रमण से खुद को बचाए रखने हेतु महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानने की है लेकिन चूँकि इस समय कोरोना वायरस पर लोगों का ध्यान सबसे अधिक है, इसलिए उसी के सन्दर्भ में बात आगे बढ़ाते हैं।

कोरोना वायरस से बचने के लिए यह जरूरी है कि अपने शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को लगातार मजबूत बनाए रखा जाए, लेकिन इसके लिए यह भी जरूरी है कि हमारा मन भी इस वायरस के प्रति भयग्रस्त व चिन्ताग्रस्त न रहे, बल्कि सतर्क व सजग रहे। क्योंकि पूरे विश्व में तेजी से फैलने वाले कोरोना वायरस के प्रति मन यदि भयग्रस्त व चिन्ताग्रस्त होगा, तो तरह-तरह की शंकाएँ मन में पनपने लगेंगी, नकारात्मक कल्पनाएँ हावी होने लगेंगी, जिसके कारण व्यक्ति का मन अधिक भ्रमित होगा और वह भली प्रकार अपनी देखभाल नहीं कर पाएगा।

इस समय विशेषज्ञ लगातार इस बात पर जोर दे रहे हैं कि कमजोर इयुनिटी हमें संक्रमणों का आसानी से शिकार बना देती है। ऐसे में सर्दी-जुकाम से लेकर कैंसर तक की आशंका बढ़ सकती हैं। इस तरह से इयून सिस्टम यानि हमारा रोगप्रतिरोधक तंत्र हमारे शरीर के ठीक ढंग से काम करने और रोगों से लड़ने की चाबी है। होता यह है कि जब कोई वायरस किसी व्यक्ति को संक्रमित करता है तो वह जीवित रहने और अपनी संया बढ़ाने केलिए उस व्यक्ति की कोशिकाओं पर आक्रमण करता है।

इस संक्रमण से लड़ने के लिए इयून सिस्टम टी-सेल पैदा करता है पर कुछ वायरस इनसे बचने के कुछ तरीके विकसित कर लेते हैं। जो वायरस टी सेल से बच जाते हैं, उन्हें मारने के लिए

इयून सिस्टम एंटीबॉडी का निर्माण करता है लेकिन कमजोर इयून सिस्टम वाले लोगों का शरीर इन वायरस से लड़ नहीं पाता है, नतीजतन वे बीमार पड़ जाते हैं।

अगर कोई व्यक्ति संक्रामक रोगों की चपेट में जल्दी आ आते हैं, बार-बार बीमार पड़ते हैं, उन्हें एलर्जी रहती है, थकान व ऊर्जा की कमी महसूस होती है, उन्हें श्वसन तंत्र से जुड़ी समस्याएँ रहती हैं, हर समय पेट की समस्याओं से ये जूझते रहते हैं, इन्हें भूख कम लगती है, ये आसानी से तनावग्रस्त हो जाते हैं और इन्हें अनिद्रा की समस्या रहती है- यदि इस तरह के लक्षण हमारे शरीर में देखने को मिलते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कमजोर है।

आसपास की गंदगी भी कमजोर इयुनिटी वालों में संक्रमण के खतरे को बढ़ा देती है। इसलिए यह जरूरी है कि अपनी और अपने आसपास की साफ-सफाई का ध्यान रखा जाए। फल और सब्जियों को खाने और पकाने से पहले अच्छी तरह धो लिया जाए। अच्छी तरह पका हुआ भोजन ही ग्रहण किया जाए। भोजन बनाने और भोजन ग्रहण करने से पहले हाथों को भली प्रकार साबुन से धोकर साफ कर लिया जाए।

आयुर्वेद के अनुसार, अच्छी सेहत हमारे पाचन तंत्र से जुड़ी होती है। इसलिए यह जरूरी है कि हम ताजा, सुपाच्य व हल्का भोजन ग्रहण करें। बहुत से लोग भोजन ग्रहण करते समय उसे ठीक से चबाते नहीं हैं और उसे जल्दी-जल्दी निगल जाते हैं, इससे पेट तो भर जाता है, लेकिन मन नहीं भरता और न ही ग्रहण किए जाने वाले भोजन में ठीक से लार का समावेश हो पाता। जिसके कारण भोजन ठीक तरह से पचता नहीं है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि चबाने का कार्य केवल हमारे दाँत करते हैं, चबाने का कार्य हमारी आँतें नहीं कर सकतीं। इसलिए यदि भोजन भली प्रकार चबाकर ग्रहण नहीं किया जाता, वह ठीक से पचता नहीं है।

यदि भोजन ग्रहण करते समय उसे ठीक से चबाकर ग्रहण किया जाए, तो ऐसा भोजन औषधि के समान शरीर को स्वस्थ व निरोगी बनाने में अपनी भूमिका निभाता है। इसके साथ ही पेय जल व पेय पदार्थों का भी धीरे-धीरे पान करना चाहिए, ताकि उसमें लार का सम्मिश्रण हो सके। लार हमारे शरीर का बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्व है, जिसका यदि भली प्रकार से भोजन व पेयपदार्थों में मिलना संभव होता है, तो वह शरीर के लिए सामान्य से बहुत उपयोगी हो जाता है और हमें लाभान्वित करता है।

आयुर्वेद के अनुसार- हमारे खान-पान की चीजों में, औषधियों में, हमारी रसोई में कुछ ऐसे पदार्थ हैं, जो हमारी इयुनिटी को बढ़ाने में सहायक होते हैं, जैसे- हल्दी, तुलसी, लौंग, हींग, अजवाइन, दालचीनी, गिलोय, एलोविरा आदि। यदि इन पदार्थों को भोजन के माध्यम से या औषधि रूप में यथोचित मात्रा में ग्रहण किया जाए, तो ये हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत बनाने में सहायक होते हैं।

वर्तमान में कोरोना वायरस या किसी भी अन्य हानिकारक वायरस से बचाव हेतु यह जरूरी है कि शरीर की प्रकृति को गर्म रखा जाए, इसके लिए गुनगुने जल का सेवन करने के साथ ही साथ औषधियों से युक्त काढ़े का सेवन, गरम व ताजा भोजन, दूसरों के संपर्क से बचाव, साथ ही स्वस्थ व स्वच्छ रहने हेतु आवश्यक सावधानियाँ अपनानी भी जरूरी है। इसके साथ ही मन की क्षमता को मजबूत बनाने हेतु साधना जैसे-जप, प्राणायाम, ध्यान, स्वाध्याय आदि का उपक्रम भी जरूरी है, जिससे मन का परिशोधन व परिष्कार हो सके व मन सशक्त बन सके। यदि हमारा शरीर व मन दोनों ही स्वस्थ व स्वच्छ होंगे, तभी हम पूरी तरह से रोगाणुओं से सुरक्षित रह सकेंगे।

• • •

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता। निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधमालस्यं दीर्घसूत्रता॥

अर्थात् इस संसार में समृद्धि चाहने वाले मनुष्य को छह दोषों का त्याग कर देना चाहिए- निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता अर्थात् किसी कार्य को बहुत मंद गति से करना।

जीवनमूल्यों पर संकट एवं शिक्षण संस्थानों की भूमिका

जीवन मूल्य वे गुण एवं विशेषताएँ हैं, जो व्यक्ति के जीवन को मूल्यवान बनाते हैं। मानव जीवन का मूल्य व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं उसके गुण, कर्म, स्वभाव पर निर्भर करता है। यदि हम जीवन को मात्र तन-मन तक सीमित मानते हैं, तो फिर यह कुछ जैविक-रासायनिक एवं मानसिक तत्त्वों का मिश्रण भर है। यदि जीवन को हम आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं, तो उपरोक्त तत्त्वों के साथ यह आलौकिक सपदा से भरा, आध्यात्मिक वैभव से सपन्न बेशकीमती जखीरा है, जिसका मूल्य लगाना सरल नहीं। इसे अमूल्य ही कहा जा सकता है। महाभारत के रचनाकार महर्षि वेदव्यास ने इसी आधार पर कहा था कि इस सृष्टि में मानव जीवन से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। माना जाता है कि देवता तक इस मानव शरीर को धारण करने के लिए तरसते हैं क्योंकि इसी शरीर में कर्म करते हुए व्यक्ति चेतना के उच्चतम सोपान तक पहुँच सकता है, जो अन्यत्र संभव नहीं।

भारतीय चिंतन में जीवन को समग्र रूप में देखने की परपरा रही है, जिस कारण चार पुरुषार्थों में जीवन मूल्यों को समेटा गया, यथा- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जिसमें अर्थ और काम भौतिक मूल्य हैं, धर्म नैतिक मूल्य है तथा मोक्ष आध्यात्मिक। जीवन के अर्थ एवं काम से जुड़े भौतिक पक्ष धर्म के साथ मंडित होने पर मोक्ष का माध्यम बनते हैं। इसी पृष्ठभूमि में संयम, सदाचार, धैर्य, उदारता, सहिष्णुता, सेवा, परोपकार आदि यहाँ स्वाभाविक रूप में जीवन के अंग रहे व जीवन मूल्यों के रूप में व्यक्ति एवं समाज को सुख, शांति एवं उत्कर्ष के मार्ग पर आगे बढ़ाते रहे। इसी आधार पर देश वैभव की दृष्टि से कभी सोने की चिड़िया रहा तथा ज्ञान-ऐश्वर्य के आधार पर विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित रहा। ये इसके मूल्यों की समग्रता की बानगी पेश करते हैं।

इतिहास के विभिन्न पलों में जब भी ये मूल्य क्षीण हुए, तभी समाज कमजोर पड़ा तथा जनमानस दिशाहीन हुआ। अराजकता एवं हताशा-निराशा का वातावरण पनपा। गुलामी के पिछले हजारों वर्षों का दौर इसका साक्षी रहा। बीच-बीच में सांस्कृतिक आधार पर जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रयास हुए, लेकिन ये सामयिक रहे। सन् 1947 तक का पूरा दौर तो विदेशी शासन से देश की राजनैतिक स्वतंत्रता के संघर्ष का ही रहा। आशा थी कि स्वतंत्रता के बाद देश में मूल्यों की नयी बयार बहेगी लेकिन इसके विपरीत क्रमशः पतन के ही दृश्य चारों ओर दृश्यमान हुए। परिणाम यह है कि भ्रष्टाचार आज एक शिष्टाचार का रूप ले चुका है तथा कैंसर की भांति राष्ट्रीय जीवन को खोखला कर रहा है। लोकतंत्र का हर स्तभ नैतिक पतन एवं मूल्यों के गंभीर ह्रास के संकट से गुजर रहा है। छोटे-छोटे प्रलोभनों के लिए जनता को बहकते-भटकते एवं राजनैतिक दुरभिसंधियों का शिकार होते देखा जा सकता है, जो स्वयं में बहुत दुखद एवं चिंता का विषय है। समझदार लोगों में इसके प्रति आक्रोश का भाव है। इसी पृष्ठभूमि में नए परिवर्तन की पटकथा तैयार हो रही है, जिसके आंशिक दर्शन हो भी रहे हैं और इसका पूर्ण पटाक्षेप अगले दिनों होना है। वस्तुतः देवासुर संग्राम जीवन के हर क्षेत्र में अपने चरम पर है, राष्ट्रीय जीवन भी इसकी लोमहर्षक घड़ियों से गुजर रहा है।

स्मरण रहे कि मूल्य वैयक्तिक भी होते हैं और सामाजिक-राष्ट्रीय भी, लेकिन इनका आधार व्यक्ति के जीवन मूल्य ही होते हैं, जिन्हें पारपरिक भाषा में संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार ही तय करते हैं कि व्यक्ति कितना ईमानदार, जिमेदार एवं समझदार है। समाज एवं राष्ट्रीय जीवन में इन मूल्यों का साहसिक प्रयोग उच्चस्तरीय नेतृत्व को तय करता है। जिस समाज में नैतिक मूल्य क्षीण होते हैं, वह उसी स्तर के निकृष्ट नेतृत्व के साये में जीने के लिए अभिशप्त होता है। इस पृष्ठभूमि में शिक्षा तंत्र की भूमिका निर्णायक हो जाती है क्योंकि देश व समाज का संचालन करने वाली विभूतियाँ इन्हीं शिक्षण संस्थानों से पनपती हैं, यहीं तराशी जाती हैं, यहीं की पैदायश होती हैं और ये ही बहुत हद तक देश व समाज की बौद्धिक एवं भावनात्मक दशा-दिशा को तय करती हैं।

ऐसे संस्थानों की मूल्यहीन शिक्षा एवं संस्कारविहीन वातावरण बौद्धिक एवं प्रोफेशनल रूप से कुशल प्रोडक्ट तो तैयार

कर देते हैं किंतु चिंतन-चरित्र क्षेत्र में वह समग्रता, विशालता एवं श्रेष्ठता का समावेश नहीं कर पाते, जिसके अभाव में बौनी सोच एवं नैतिक मूल्यों से दुर्बल पीढ़ी तैयार होती है। जीवन मूल्यों की दृष्टि से विकलांग ऐसी पीढ़ी ही आगे चलकर सृजन की बजाए ध्वंस का ही माध्यम बनती है, जिन्हें यदा-कदा देश व समाज की जड़ों पर कुठाराघात करते देखा जा सकता है। ऐसे तत्व सिनेमा में हों या मीडिया में, शिक्षा जगत में हों या साहित्य के क्षेत्र में, कला क्षेत्र में हों या धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र में या किसी अन्य क्षेत्र में, ये अपनी विकृत एवं विषाक्त सोच के कारण राष्ट्रीय एकता-अखण्डता से खिलवाड़ करते रहते हैं।

प्राचीन काल में गुरुकुलों में श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का बीजारोपण किया जाता था। ब्रह्मचर्य के व्रत में तपकर, नाना प्रकार की ज्ञान-विज्ञान की धाराओं में निष्णात होकर एक उत्कृष्ट व्यक्तित्व के साथ एक श्रेष्ठ नागरिक के रूप में बाहर निकलता था। शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि- हमें आवश्यकता है ऐसी शिक्षा कि जो व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाए। उसमें सिंह का साहस भर सके, उसके चरित्र का गठन कर सके, उसमें परोपकार का भाव विकसित कर सके तथा उसमें सत्य एवं आदर्श के निमित्त बलिदानी जज्बा फूँक सके।

युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के शब्दों में शिक्षा ही काफी नहीं। वह तो पेट पालने भर का प्रयोजन सिद्ध करती है। इसके साथ जीवन मूल्यों का समावेश करने वाली विद्या भी आवश्यक है और बिना विद्या के शिक्षा अधूरी है। गायत्री तीर्थ शांतिकुंज जीवन मूल्यों के प्रशिक्षण केंद्र के रूप में ही स्थापित हुआ है, जहाँ विभिन्न शिविरों के माध्यम से इनका प्रशिक्षण चलता रहता है। इसके साथ युगऋषि के चिंतन पर आधारित गुरुकुल विद्यापीठ में प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर बारहवीं तक ऐसी आदर्श शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था रही है। इसी कार्य को देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जीवन विद्या के आलोक केंद के रूप में विशिष्ट स्तर पर सपन्न होते देखा जा सकता है।

यहाँ की वेद मंत्रों के साथ ज्ञानदीक्षा का क्रम एक व्रतशील जीवन जीवन के लिए युवा छात्र-छात्राओं को संकल्पित करता है। दैनिक पढ़ाई के साथ गीता, ध्यान एवं जीवन प्रबन्धन की कक्षाऐं जीवन जीने की कला का व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक शिक्षण देती हैं। यहाँ की कसी हुई दिनचर्या व्यक्ति को अनुशासित जीवन का पाठ पढ़ाती हैं। दीवारों एवं सड़क पर लगे प्रेरक सदवाक्यों के साथ परिसर का आध्यात्मिक वातावरण तो जैसे यहाँ हवा के झोंके के साथ जीवन मूल्य का शिक्षण देता प्रतीत होता है। पढ़ाई पूरी होने पर सोशल इंटर्नशिप के प्रयोग एक माह तक युवाओं को देश भर में समाज के बीच रहकर अपनी शिक्षा एवं विद्या को परखने का अवसर देते हैं और सामाजिक दायित्व का बोध जगाते हैं।

इस तरह जीवन मूल्यों में स्नात एक प्रबुद्ध युवा के रूप में यहाँ के विद्यार्थी अपनी अगली भूमिका के लिए यहाँ से गढ़ कर तैयार होते हैं तथा अपनी नौकरी करने के साथ एक श्रेष्ठ नागरिक के रूप में समाज एवं राष्ट्र निर्माण के महत्तर कार्य के निमित्त पदार्पण करते हैं। आह्वान है आज ऐसे युवा शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का जो इस महत्तर प्रयोग का हिस्सा बनने के इच्छुक हैं। साथ ही आवश्यकता इस जीवन विद्या के मॉडल को देश में व्यापक स्तर पर लागू करने की भी है, जिससे कि यहाँ से अपने देश, संस्कृति, समाज एवं मानवता के प्रति अनुराग से भरी पीढ़ी तैयार हो सके तथा देश अपनी उस गौरवमयी स्थिति में पुनः प्रतिष्ठित हो सके, जिसका वह सदा से हकदार रहा है।

• • •

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक लुई जेकिलिमेट ने भाव भरे शब्दों में लिखा है-'हे मानव जाति के आदर्शों की पोषक भारतभूमि! तुहें नमस्कार है। शताब्दियों तक अगणित आक्रमण रहने पर भी तेरी गरिमा न तो मलिन हुई, न कलुषित। तेरा स्वागत है। हे श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्मदात्री! तुझे शत-शत नमन।'

असाधारण है यह पतझड़

पतझड़ के शुरू होते ही वसंत के आने की आहट होने लगती है। पतझड़ में जो भी पुराने पत्ते हैं वे सब झड़ने लगते हैं। वृक्षों की डालियों से लगे पुराने पुष्प, पल्लव स्वयं ही झरने लगते हैं। उन्हें डालियों से जीवन रस मिलना, पोषण मिलना जैसे ही बंद हुआ वैसे ही उनके टूटने का, झड़ने का, गिरने का क्रम शुरू हो जाता है। तब प्रकृति फिर से नये रूप में, नये रंग में, नये श्रृंगार में दिखने लगती है।

कोयल की कुहू-कुहू से भँवरों के प्राण फिर से स्पंदित-उद्वेलित होने लगते हैं। पपीहा फिर से गाने लगता है। सारी प्रकृति नयी उमंग, नयी तरंग, नयी स्फूर्ति, नयी चेतना, नयी ऊर्जा से ओतप्रोत हो उठती है। इस समय पेड़-पौधे नये पत्ते, नये पल्लव, नये पुष्प धारण करने लगते हैं। चहुँओर रंग-बिरंगे पुष्प खिल उठते हैं। खेतों में सरसों के पीले-पीले पुष्प लहराने लगते हैं। वासंती बयार बहने लगती है। गेहूँ की बालियाँ खिलने लगती हैं। आमों के पेड़ों पर बौर आने लगते हैं।

प्रकृति का ऐसा अद्भुत सौन्दर्य, श्रृंगार, निखार, सचमुच सबके मन को मुग्ध कर देता है। सौन्दर्य के समस्त रूपों को अभिव्यक्त कर सौन्दर्य के चरम को छू लेने के कारण ही वसंत को ऋतुओं का राजा, ऋतुराज कहा गया है। जैसे वसंत ऋतुओं का राजा है वैसे ही मनुष्य इस धरती का राजा है क्योंकि वह विधाता की सर्वोत्तम कृति है।

वह सभी जीवों में श्रेष्ठ है और ईश्वर का अंश होने के कारण ईश्वर का राजकुमार है परंतु मनुष्य को इसका भान ही कहाँ है? बोध ही कहाँ है? क्यों? क्योंकि वह अपनी इन्द्रियों का दास बना बैठा है। वह अपनी इन्द्रियों के इशारे पर नाचता फिरता है। यदि मन ने उससे कहा कि वासना सुखमय है तो व्यक्ति वासना में ही सुख ढूँढने लगता है। यदि मन ने कहा कि कामनापूर्ति में ही सुख है तो फिर व्यक्ति किसी भी तरीके से कामना की पूर्ति में लग जाता है। यदि मन ने कहा कि अश्लीलता देखो, विषय भोगों को देखो तो व्यक्ति अपने स्थूल नेत्रों से या मन की आँखों से उसे देखने लगता है, उसकी कल्पना करने लगता है। मन के इशारे पर ही हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के भँवर जाल में फँसे-उलझे रहते हैं।

ऐसे में व्यक्ति सत्, रज, तम की सीमा के उस पार देख ही नहीं पाता। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की सीमा के पार नहीं देख पाता परंतु यह कौन सा पतझड़ है, जिससे होकर व्यक्ति को गुजरना है, साधक को गुजरना है। निस्संदेह यह पतझड़ सामान्य नहीं असामान्य है, साधारण नहीं असाधारण है।

यह आग का दरिया है और साधक को इसमें से डूबकर जाना है; क्योंकि यह पतझड़ व्यक्ति के कर्म-संस्कारों के झड़ने का, टूटने का, गिरने का, मिटने का होता है। यह पतझड़ साधक की कामनाओं, वासनाओं, विकारों के पल्लव के झड़ने का, गिरने का, मिटने का होता है। यह पतझड़ साधक की संसार व शरीर के प्रति घोर आसक्ति के मिटने का होता है। यह पतझड़ भौतिक सुख-साधनों के पीछे जन्म-जन्मांतरों से भागते रहने की प्रवृत्ति के नाश का, विनाश का होता है। यह पतझड़ जीवन-मरण के चक्रव्यूह से सदा-सदा के लिये मुक्त हो जाने का होता है।

यह पतझड़ आत्मा के आनंद में, परमात्मा के परमआनंद में सदा-सदा के लिये स्थिर हो जाने का होता है किंतु विडबना यह है कि हम अपनी आत्मा के परम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो चाहते हैं, हम अपनी आत्मा में परमात्मा के प्रकाश को प्रस्फुटित होते घटित होते देखना तो चाहते हैं, हम अपने अंदर वसंत के आने की आहट सुनना तो चाहते हैं परंतु स्वयं बिना पतझड़ से गुजरे हुये, बिना संयम-साधना किये हुये, बिना आसक्ति त्यागे हुये, बिना कर्म-संस्कारों को क्षय किये हुये।

हम स्वर्ण सा चमकना तो चाहते हैं परंतु बिना अग्नि में बैठे ही, बिना स्वयं को तप में तपाये हुए इसलिये व्यक्ति अब तक स्वयं का

परिचय नहीं पा सका और इसलिये तो अब तक उसके जीवन में वसंत के आने की, आनंद के आने की आहट नहीं होती।

वसंत के आगमन से पूर्व पतझड़ का आना, पतझड़ का होना अपरिहार्य है, अनिवार्य है, आवश्यक है। पतझड़ हुये बिना, पतझड़ से गुजरे बिना वसंत का होना, वसंत का आना कतई संभव नहीं क्योंकि पतझड़ ही तो वसंत के आने की, आगमन की तैयारी है। पतझड़ के बाद ही वसंत अपने संपूर्ण सौन्दर्य को अभिव्यक्त कर पाता है। पतझड़ के बाद ही वह नये पल्लव, नये पुष्प धारण कर सौन्दर्य के चरम को छू पाता है और इसलिये वह ऋतुओं का राजा, ऋतुराज कहा जाता है।

व्यक्ति यदि अपने अंदर पतझड़ को आने दे, पतझड़ को घटित होने दे तो उसके अंदर भी वसंत उतर सकता है, आनंद उतर सकता है। उसकी आत्मा अपने संपूर्ण सौन्दर्य में अभिव्यक्त हो सकती है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को पा सकता है, पहचान सकता है। वह अपनी आत्मा में ही परमात्मा के परम प्रकाश को प्रस्फुटित होते देख सकता है।

हमारे मन में, चित्त में संस्कारों का एक विशाल वटवृक्ष उग आया है। उस वृक्ष की सभी डालियों पर अभी भी पुराने पत्ते लगे हुये हैं, पुराने पल्लव लगे हुये हैं। हमारे जन्म-जन्मांतरों के शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे कर्मों के संस्कार-विकार ही तो इस वटवृक्ष की विविध डालियों पर लगे हुये, लटके हुये पल्लव हैं, पत्ते हैं जो अब तक झड़े नहीं, अब तक टूटे नहीं। हमारे मनरूपी वटवृक्ष की डालियों पर लगे हुये, उगे हुये ये सारे पुराने पल्लव, पुराने संस्कार झड़ सकें, टूट सकें, इसलिये ही हमें पतझड़ से होकर जाना है, गुजरना है।

कई बार हम छुट-पुट साधनाओं से, स्वयं के प्रयास से अपने मन को झकझोर कर मन की डालियों पर लगे कुछ विचारों, कुछ संस्कारों के पल्लव को झाड़ तो पाते हैं पर कालान्तर में वे पुनः नये रूप में उन डालियों में उग आते हैं। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि जब मन रूपी वटवृक्ष को जमीन से कर्म-संस्कारों का जीवन रस मिल रहा है तब तक रह-रह कर उसमें पल्लव उगेंगे ही, फल लगेंगे ही। वैसे ही जैसे यदि आग जल रही हो, तो उससे निकल रहे धुऐं को घर के दरवाजे व खिड़कियाँ बंदकर, बाहर निकलने से नहीं रोका जा सकता है। वे कहीं न कहीं से बाहर निकलेंगे क्योंकि उस धुऐं को आगे से जीवन जो मिल रहा है। अस्तु यदि धुऐं को रोकना है तो आग को बुझाना होगा, जो कि धुऐं का वास्तविक कारण है।

हमें संस्कारों के वटवृक्ष को यदि जड़ से उखाड़ फेंकना है तो हमें अपने मन को ही मार देना होगा, मिटा देना होगा। मन की मृत्यु होते ही संस्कारों का वटवृक्ष समूल समाप्त हो सकेगा। मन का विकारों से मुक्त हो जाना ही मन की मृत्यु है। मन का सभी प्रकार के संस्कारों से मुक्त हो जाना ही मन की मृत्यु है। मन का, चित्त का सभी प्रकार की वृत्तियों से मुक्त हो जाना ही मन की मृत्यु है और मन की मृत्यु ही योग है।

मन की वृत्तियों का मिट जाना ही योग है। मन की वृत्तियों के मिटते ही, चित्त की वृत्तियों के मिटते ही साधक को अपने सत्, चित, आनंद स्वरूप की अनुभूति होने लगती है। जैसे बादलों के हटते ही, मिटते ही, बादलों में छिपे सूर्य का साक्षात्कार हो उठता है वैसे ही संस्कारों, विकारों के बादलों के मिटते ही साधक को अपनी आत्मा में ही विराट पुरुष का, परमपिता परमात्मा के परम प्रकाश का साक्षात्कार होने लगता है।

जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों के प्रभाव के कारण शरीर, संसार व भोग पदार्थों में जो अब तक हमारी घोर आसक्ति थी वह समूल मिटने लगती है। मन से विकारों के बादल छटते ही, हमें अपने मन की आँखों से, ज्ञान की आँखों से नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य का बोध होने लगता है। हमें अपने शरीर रूपी पिंड में ही ब्रह्माण्ड के दर्शन होने लगते हैं परंतु इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये हमें सचमुच ही एक गहन साधना के पथ से होकर गुजरना होता है, जीवन के पतझड़ से होकर गुजरना होता है।

तप साधना से ही हमारे विकारों, संस्कारों के पल्लव झड़ेंगे, टूटेंगे और तब हमारे भीतर सचमुच एक नये वसंत का, नये आनंद का, उमंग का, उत्सव का, तरंग का, आगमन होगा। तब हमारी आत्मा हमारे भीतर अपने संपूर्ण रूप में, संपूर्ण सौन्दर्य में अभिव्यक्त हो सकेगी। तब हमारे अंतस में करुणा, प्रेम, सेवा, संवेदना के

रंग-बिरंगे पुष्प खिल उठेंगे और हमारा जीवन भी महक उठेगा। तब हमारी आत्मा में ही संगीत का सरगम बहेगा। ऐसे में हमारे लिए संपूर्ण प्रकृति नाच उठेगी और यही आत्मा से परमात्मा के मिलन की मधुर वेला होगी जो कुछ पल के लिए नहीं, एक ऋतुमात्र के लिये नहीं बल्कि हमेशा-हमेशा के लिये होगी। फिर चाहे हम देह में हों या देह के पार हों। फिर चाहे हम संसार में हों या संसार के पार हों।

तब हम सचमुच परमात्मा के सच्चे राजकुमार हो सकेंगे और सचमुच यही सच्चा व शाश्वत वसंत है, आनंद है जिसे हमें विविध तप साधनाओं से, योग साधनाओं से प्राप्त करना है। सचमुच ऐसा ही जीवन का वसंत होना चाहिए। ऐसा ही वीरों का वसंत होना चाहिए। ऐसा ही वीर साधकों का वसंत होना चाहिए क्योंकि ऐसा वसंत तो वीरों का ही हो सकता है, साधकों का ही हो सकता है क्योंकि इस वसंत के आगमन हेतु वीर साधक को साधना के समर में उतरना ही होगा और रणबांकुरा बन साधना के कुरुक्षेत्र में उतरना ही होगा। साधक को अपनी चित्तवृत्तियों का संहार करना ही होगा। अपनी चित्तभूमि पर उतरकर अपने कर्म-संस्कारों का संहार करना ही होगा। मधु-कैटभ, शुभ-निशुभ आदि निम्नवृत्तियों का लोभ, मोह, वासना का संहार साधक को करना ही होगा और साधना की शेर-सवारी कर हम ऐसा निश्चित ही कर सकते हैं और इस हेतु हर वीर साधकों के लिये यह अभीष्ट भी है, आह्वान भी है। उनके लिए यह आमंत्रण भी है और एक पुकार भी।

• • •

अश्वपति ने राज्यविस्तार तो नहीं किया पर समर्थ नागरिक तैयार करने के लिए जो भी उपाय संभव हो सकते थे, वो अवश्य किए। यही कारण था कि उसके राज्य में सभी स्वस्थ, वीर और बहादुर नागरिक थे। काना, कुबड़ा, दीन-हीन और आलसी इनमें से एक भी न था। अश्वपति के राज्य में जन्म लेते ही बच्चे राज्य के नियंत्रण में सौंप दिए जाते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध अश्वपति स्वयं करता था। उसका हर नवयुवक चरित्रबल, दृढ़ता, शौर्य और संयम की प्रतिमूर्ति था।

पोरस से युद्ध करने के बाद सिकंदर थक-हार कर जब वापस लौटने लगा तो उसने सोचा कि क्यों न आसपास के छोटे राज्य ही हड़प लिए जाऐं। उसकी दृष्टि अश्वपति के राज्य पर पड़ी। उसने रात्रि में छल से अश्वपति पर आक्रमण किया। छलपूर्वक हुए इस आक्रमण ने अश्वपति की हार हुई। अश्वपति बंदी बना लिए गए। अश्वपति के चार वफादार कुत्ते थे जो उनके साथ रहते थे। सिकंदर ने कुत्तों की लड़ाई शेर से कराने की सोची। अश्वपति बाले- राजन्! ये भारतीय कुत्ते हैं। ये शेरों से भी मैदान में लड़ते हैं। छिपकर आक्रमण नहीं करते।

कुत्तों और शेर के मध्य लड़ाई प्रारंभ हुए तो देखत-देखते कुत्तों ने शेर को लहूलुहान कर दिया। शेर भागने को मजबूर हो गया। यह देखकर सिकंदर बोला- जिस राज्य के कुत्ते भी इतने पराक्रमी हैं, वहाँ की सेना को हम कैसे हरा पाए? अश्वपति बोले- यदि आपने छल न किया होता और यह युद्ध आमने-सामने का होता तो यथार्थता का पता चल जाता। सिकंदर के पास मुँह लटकाने के अतिरिक्त और कोई चारा न था।

चेतना की शिखर यात्रा-216

राजनीति से हटकर

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1977 के आरभ से देश के प्रतिष्ठित राजनैतिक विभूतियों का शांतिकुंज आने का सिलसिला आरभ हुआ। जिस क्रम में इसी वर्ष जनवरी माह में राजस्थान राज्य के तत्कालीन मुयमंत्री हरिदेव जोशी एवं विपक्षी दल के प्रमुख नेता व राज्यसभा सदस्य भैरोसिंह शेखावत की एक ही साथ पूज्यवर से शांतिकुंज में भेंट संपन्न हुई। इस अप्रत्याशित घटना के साक्षी बने शांतिकुंज आश्रम में निवासरत शिविरार्थियों के लिए इन दो भिन्न मत वाले विरोधी दलों के राजनेताओं का एक जगह ऐसा समागम बन पड़ना कौतुहल पैदा करने वाला था। इसका समाधान कुछ समय पश्चात राजस्थान राज्य सरकार द्वारा जारी किये गए दिशा-निर्देशों में बाल-विवाह, धार्मिक-स्थलों में प्रवेश-निषेध जैसी सामाजिक कुप्रथाओं के विधिवत निस्तारीकरण के ऐतिहासिक निर्णय के रूप में सामने आया। जिसे बीते समय इस घटना के साक्षी बने लोगों ने पिछली कड़ियों को जोड़ते हुए पाया कि राज्य सरकार द्वारा उठाये गए इस साहसिक कदम के पीछे निश्चित ही पूज्यवर की सद्प्रेरणा एवं शक्ति ने काम किया है। देश में लागू आपातकाल के दौर में भंग हुई लोकसभा एवं अनिश्चितकाल के लिए रद्द किये गए आम चुनावों में आकस्मिक उलटफेर होने की घोषणा भी सभी को कम चौंका देने वाली नहीं थी। इसके साथ केंद्र एवं राज्य सरकार में सक्रिय राजनेताओं का बड़ी संया में शांतिकुंज पधारना प्रारंभ हुआ। अपने निहित प्रचारात्मक उद्देश्य से आये प्रत्येक राजनेता से पूज्यवर ने अपने राजधर्म के प्रति निष्ठावान बनने का आग्रह किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

उन दिनों मध्यप्रदेश के मुयमंत्री रहे श्यामाचरण शुक्ल भी एक दिन अचानक शान्तिकुञ्ज पहुँचे। यों वे पहले भी आते जाते रहे थ लेकिन इस बार उनके आने की सूचना कुछ घंटे पहले ही मिली। आम चुनाव की घोषणा के बाद वे केन्द्रीय नेतृत्व से मार्गदर्शन लेने के लिए संभवतः दिल्ली आए होंगे। वहां बने कार्यक्रम के साथ उन्होंने शान्तिकुञ्ज आना ी तय कर लिया था। उनके छोटे भाई विद्याचरण शुक्ल तब केन्द्र में सूचना प्रसारण मंत्री थे और आपातकाल के दौरान अपने फैसलों और नीतियों के कारण काफी चर्चित हुए थे। लोग समझ और सोच सकते थे कि उनके आने का तात्कालिक कोई राजनीतिक प्रयोजन होगा लेकिन श्यामाचरण शुक्ल इस तरह शान्तिकुञ्ज आया जाया करते थे, जैसे गायत्री परिवार के ही कार्यकर्त्ता हों। यही नहीं वे अपने क्षेत्र में, होने वाले यज्ञ-समेलनों में भी कार्यकर्त्ता की हैसियत से शामिल होते थे। इसलिए उनके प्रवास का जो भी अर्थ लगाया जाए, आश्रम के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता अच्छी तरह समझ रहे थे कि उनकी यह यात्रा व्यक्तिगत ही होगी। शान्तिकुञ्ज के परिसर में कदम रखते ही उन्होंने और स्पष्ट कर दिया। उनके स्वागत के लिए मुय द्वार पर उपस्थित वरिष्ठ कार्यकर्त्ता द्वारा अभिवादन करते ही उन्होंने तपाक से कहा, "मैं गुरुदेव से अपनी पार्टी के लिए समर्थन या आशीर्वाद लेने नहीं आया हूँ। इस बार यहाँ आने का उद्देश्य उनसे सिर्फ आत्मबल मांगना है।"

मुय मंत्री महोदय उन कार्यकर्त्ता के साथ कुछ मिनट कार्यालय में रुके और वहीं से गुरुदेव के पास चले गए। उन दिनों शान्तिकुञ्ज में चल रहे शिविर में मध्यप्रदेश के कार्यकर्त्ता भी अच्छी संया में थे। राज्य के मुयमंत्री के यहाँ आने की सूचना पाकर वे इकट्ठे होने लगे। कुछ ने अनुरोध किया कि संभव हो तो मुयमंत्री शिविरार्थियों से मिलें और मध्यप्रदेश के लोगों को भी संबोधित करें। इस बारे में मुयमंत्री की इच्छा और सुविधा के अनुसार ही कोई निर्धारण करने की बात कही गई। कुछ ही मिनटों बाद यह सूचना आ गई कि श्यामाचरण शुक्ल पंद्रह-बीस मिनट कार्यकर्त्ताओं से अपने अनुभव और विचार बाँटेंगे। उन दिनों जिस तरह की राजनीतिक गहमागहमी चल रही थी, उसके चलते किसी वरिष्ठ और खासकर सता पक्ष के नेता का किसी आश्रम में अनिर्धारित भाषण देना अप्रत्याशित था। गुरुदेव से मिलने के बाद मुयमंत्री नीचे उतरे और सभागार में शिविरार्थियों से मिले। उन्होंने साधकों और परिजनों से अनौपचारिक संवाद किया, जो न किसी अखबार में छपा और न ही रिकार्ड किया गया। उसका विवरण आश्रम के वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं की दैनंदिनी में दर्ज है।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

नेता नहीं स्वयंसेवक

श्यामाचरण शुक्ल इस संवाद के आरभ में ही मध्यप्रदेश से आये परिजनों और संगोष्ठी में आए अन्य प्रान्तों के कार्यकर्त्ताओं के लिए "श्यामा भैया" बन गए थे। उन्होंने शुरुआत ही इस तरह की थी कि वे राजनेता कम गायत्री परिवार के सदस्य ज्यादा लगें। उन्होंने बताया कि गुरुदेव से पहली मुलाकात 1966 के आसपास रायपुर में हुई थी। तब उन्होंने सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया ही था और शुरुआती दिनों में स्वाभाविक उभरने वाला जोश मन में भरा हुआ था। जोश इस तरह का कि प्रतिद्वन्द्वी को पल भर के लिए भी बर्दाश्त नहीं करें। उसे नष्ट कर देने के लिए आतुर हो उठे।

रायपुर महायज्ञ में श्यामा भैया राजनैतिक कार्यकर्त्ता की हैसियत से नहीं, स्वयंसेवक की हैसियत से शामिल हुए थे। फिर भी मन में इसका राजनीतिक लाभ मिलने की ललक तो थी ही। क्षेत्र के दूसरे राजनीतिक दलों के कार्यकर्त्ता भी आयोजन में शामिल थे। अपने अनुभव और लगन के कारण वे ज्यादा सक्रिय दिखाई दे रहे थे। उस क्षेत्र के नागरिक भी उन्हें महत्त्व दे रहे थे। श्यामा भैया और उनके सहयोगियों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने दूसरी पार्टियों के सदस्यों को अलग थलग रखने की कोशिश की पर कामयाबी नहीं मिली। इस पर स्वयंसेवकों ने सोचा कि गुरुदेव से बात करनी चाहिए। उनके सामने इन लोगों की कलई खोल दी जाये कि ये लोग किस तरह समाज को तोड़ने में लगे हुए हैं और साप्रदायिक जातीय विद्वेष फैला रहे हैं।

इस इरादे से वे डाक बँगले पर पहुंचे, जहां गुरुदेव के ठहरने की व्यवस्था की गई थी। तीसरे पहर का समय था। गुरुदेव अर्थार्थियों से घिरे बैठे थे। श्यामा भैया ने एक परची में कुछ लिखा और गुरुदेव के प्रणाम करते समय उनके चरणों में उसे रख दिया। गुरुदेव ने श्यामा भैया के सिर पर हाथ फेरा और पर्ची उठा ली। खोलकर देखा, पढ़ा और कहा 'आधा घंटे बाद,' श्यामा भैया ने पर्ची में अलग से और अकेले मिलने के लिए समय माँगा था। गुरुदेव के आधा घंटे बाद कहने पर उन्होंने और उनके सहयोगियों ने बाहर ही इंतजार करना ठीक समझा। वे अधीर हो रहे थे क्योंकि मिलने वालों का तांता लगा हुआ था। दो जा रहे थे तो तीन नए आ रहे थे। पंद्रह बीस मिनट में ही धैर्य डिगने लगा। पता नहीं गुरुदेव से मुलाकात हो भी पाएगी या नहीं। आधा घंटा बीतने को था और कक्ष के भीतर आठ दस लोग गुरुदेव से चर्चा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

श्यामा भैया के एक साथी ने दरवाजे से भीतर झांका और तुरन्त बाहर निकल कर कहा कि अभी हमें कम से कम पंद्रह मिनट और रुकना पड़ेगा। वह साथी अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि भीतर से एक स्वयंसेवक आया और उन युवा कार्यकर्त्ताओं को अंदर ले गया। इस बार गुरुदेव से जिस कक्ष में मुलाकात हुई, वहां श्यामा भैया उनके साथी और गुरुदेव के अलावा और कोई नहीं था। जिस जगह गुरुदेव बैठे थे, वहाँ दांयी ओर दीवार में तती लगी हुई थी। उस पर लिखा था अपनी बात पांच मिनट में पूरी कर लें। पर्ची देखकर विचार आया कि अपनी बात संक्षेप में और जल्दी ही कह देनी चाहिए। मन में यह बात आई ही थी कि गुरुदेव ने कहा, 'इत्मीनान से बताइए, निस्संकोच।'

लगा कि गुरुदेव ने उनके विचारों को पढ़ लिया है और भीतर जाग रही सतर्कता को इंगित करते हुए निश्चिन्त कर दिया है। शान्तिकुञ्ज के सभागार में इस पृष्ठभूमि के बाद श्यामाचरण शुक्ल ने उस बातचीत के बारे में विस्तार से बताया। कहा कि उनका जोर दूसरे दल के कार्यकर्त्ताओं की खामियों और चालाकियों की शिकायत पर ही ज्यादा था। वे यह भी कह रहे थे कि इन लोगों को गायत्री परिवार से दूर ही रखें तो बेहतर होगा। उन्हें दूर रखने पर ज्यादा लोग मिशन से जुड़ेंगे।

गुरुदेव के समाधान या उत्तर को अद्भुत कहते हुए मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुयमंत्री ने कहा कि गायत्री परिवार का काम समाज का काम है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेने और सहयोग देने का अधिकार है। किसी परिजन को अपने संगी साथी में कोई कमी दिखाई देती है तो उनका तिरस्कार करना उपाय नहीं है। उपाय यह है कि अपनी सदाशयता से उन्हें जीतें और निष्ठा तथा कर्म की ऐसी बड़ी लकीर खींचे कि उनके दोष अपने आप छोटे हो जाएँ। इसके बाद श्यामा भैया ने गुरुदेव के निकट संपर्क में आने के बाद हुए कुछ आध्यात्मिक अनुभवों की चर्चा की। वहां कही गई बातों का सार यही था कि इस यात्रा का उद्देश्य राजनीतिक कतई नहीं था।

वे सिर्फ निजी और नितान्त वैयक्तिक कारणों से आए हैं। अपनी बात कहकर मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुयमंत्री चले गए। जाते जाते उन्होंने यह भी कहा कि राज्य में ही नहीं राज्य के बाहर दूसरे प्रान्तों में भी वे गायत्री परिवार के कार्यक्रमों के लिए सदा उपलब्ध रहेंगे। उन्हें किसी भी समय याद किया जा सकता है।

गुरुदेव के पास आते जाते रहे विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की समझ साफ थी। वे जानते थे कि उनकी दलगत राजनीति में यहाँ से कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। जो भी मिलेगा वह सिर्फ आंतरिक दृष्टि से समृद्ध करेगा। कुछ नए लोग भी थे, जो गायत्री परिवार के जनाधार में अपने लिए समर्थन जुटाने की आकांक्षा रखते थे। जनवरी 1977 में लोकसभा भंग होने के बाद नए चुनाव की तैयारियाँ शुरु होने लगीं तो इस तरह की इच्छा अपेक्षा से भी लोग आने लगे। गुरुदेव का स्नेह आशीष उन्हें भी उपलब्ध था और वे उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए प्रस्तुत किए गए चित्रों पर हस्ताक्षर कर देते थे। निश्चित ही ये चित्र आगन्तुक या कार्यकर्त्ता अपने साथ ही लाते थे। कुछ तो गुरुदेव के सान्निध्य में, उनके पास उनके चरणों में बैठकर ही फोटो खिंचवाते। फोटो तैयार होकर आने में समय लगता। तब तक वे आश्रम में रुकते और अगली सुबह गुरुदेव के सामने उन पर आशीर्वाद लिखवाने-हस्ताक्षर कराने के लिए रख देते।

इस तरह का लिखित और छायांकित आशीर्वाद लेते समय उन परिजनों के मन में यह योजना भी रही थी कि इसका लाभ मिलेगा। चुनाव के समय इस तस्वीर का उपयोग गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं और सदस्यों का समर्थन जुटाने में करेंगे। उन्हें बताएंगे कि गुरुदेव ने उन्हें आशीर्वाद दिया है अब परिजनों को चाहिए कि वे समर्थन ाी दें। यह तरीका चतुराई से ज्यादा चालाकी भरा था लेकिन ऐसे कार्यकर्त्ताओं को प्रायः निराश ही होना पड़ा क्योंकि गुरुदेव सबके लिए उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए आशीष दे रहे थे। इस क्रम में कुछ नौसिखिए राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को रोचक अनुभव भी हुए। बिहार में बेगूसराय से आए कांग्रेस कार्यकर्त्ता ने मान लिया कि गुरुदेव के साथ बनवाए फोटो और आशीर्वाद से पार्टी के क्षेत्रीय नेतृत्व को प्रभावित कर लेंगे। रंगनाथ पाण्डेय नामक एक कार्यकर्त्ता जब इस आधार पर अपना दावा जताने कांग्रेस कार्यालय गए तो पता चला कि चार अन्य कार्यकर्त्ताओं ने भी क्षेत्र में अपना प्रभाव सिद्ध करने के लिए गुरुदेव का चित्र प्रस्तुत किया हुआ है। निराश होने के साथ उन कार्यकर्त्ताओं को लज्जा का अनुभव भी हुआ।

• • •

जंगल में गाय और घोड़ा घास चर रहे थे। घोड़े को ईर्ष्या हुई कि वह गाय के सींगों के डर से अच्छी घास नहीं खा पाता। उसने सोचा कि किसी तरह उस पर काबू पाया जाए। तभी वहाँ इंसान आ निकला और उसने दोनों को ललचायी नजर से देखा। घोड़ा इंसान के पास आकर बोला- देखते क्या हो, गाय का मीठा दूध पीकर अपनी भूख मिटाओ पर वह तेज दौड़ सकती है। उस पर काबू पाना है तो मेरी पीठ पर बैठ जाओ, मैं उससे तेज दौड़ सकता हूँ- उसे पकड़ने में तुहारी मदद करुँगा। इंसान घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। उसने पहले घोड़े को गुलाम बनाया और फिर गाय को काबू में किया। अपने लालच के कारण घोड़ा स्वयं तो गुलाम बना ही, उसने गाय को भी गुलाम बनवा दिया।

जलवायु परिवर्तन और आर्थिक विकास

प्रकृति ही मनुष्य के विकास का साधन है। यह कुपित हो जाए तो विनाश को रोका नहीं जा सकता है। आज की स्थिति कुछ ऐसी ही है। ग्लोबल वार्मिंग की बातें हम सालों से करते रहे हैं पर कुछ दिन पहले एक रिपोर्ट आई जिसने चौंका दिया कि ग्लोबल वार्मिंग से हो रहा जलवायु परिवर्तन दुनिया के सामाजिक-आर्थिक विकास पर गहरा असर डाल रहा है।

बीती आधी सदी में इसके कारण धनी देश और भी धनी तथा गरीब देश और गरीब होते गए हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था को इसके कारण 31 फीसदी का नुकसान हुआ है, यानी ग्लोबल वार्मिंग का नकारात्मक असर नहीं होता तो हमारी अर्थव्यवस्था वर्तमान स्थिति से तकरीबन एक तिहाई और ज्यादा मजबूत होती। स्पष्ट है कि हमें वातावरण का संतुलन बिगाड़ने की भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।

नॉर्वे का तापमान बढ़कर मानक तापमान के करीब हुआ तो उसे इसका फायदा बढ़ी वृद्धि दर के रूप में मिला। इसके विपरीत भारत जैसे गर्म देश का तापमान बढ़ने की कीमत उसे आर्थिक नुकसान के रूप में चुकानी पड़ रही है। यही नहीं ग्लोबल वार्मिंग से सूडान की अर्थव्यवस्था को 36 फीसदी, नाइजीरिया को 29, इंडोनेशिया को 27 और ब्राजील की अर्थव्यवस्था को 25 फीसदी का नुकसान हुआ है।

दिलचस्प बात यह है कि ग्लोबल वार्मिंग से जिन ठंडे देशों का तापमान बढ़ा है, उन्हें इसका लाभ भी हुआ है, साफ है कि बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग ने जैव विविधता पर गहरी चोट की है। विशेषज्ञों के अनुसार, भोजन और ऊर्जा का उत्पादन हम जिस तरीके से कर रहे हैं, उससे प्रकृति को भारी नुकसान पहुँच रहा है। जंगलों की कटाई, खेती और पशुपालन-ग्रीनहाउस गैसों के एक तिहाई उत्सर्जन के लिए जवाबदेह हैं। इसके अतिरिक्त कारखानों की बढ़ती संख्या, जीवाश्म ईंधनों के निरंतर उपभोग की वजह से भी हमारा पारिस्थितिकी तंत्र गंभीर संकट में आ गया है।

आज ग्लोबल वार्मिंग में 1 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोत्तरी के साथ भारत में केरल में बाढ़, उत्तराखण्ड में जंगल की आग और उत्तर और पूर्व में गर्मी की लहरों जैसी घटनाएँ सामने आई हैं। इससे इसकी भयावहता दिखाई दे रही है। ऐसी स्थिति से करीब 60 करोड़ भारतीयों के जोखिम में आने की संभावना है।

भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कार्बन प्रदूषक और दूसरा सबसे बड़ा कोयला उपभोक्ता है, विशेषज्ञों के अनुसार, अगर हालात न सुधरे तो सन् 2050 तक भारत को अपने सकल घरेलू उत्पाद, जीडीपी का करीब तीन फीसदी गँवाना पड़ सकता है। इसका असर देश की करीब आधी आबादी के जीवन स्तर पर भी पड़ेगा। यही नहीं मध्य भारत के दस जिलों के लोग सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। इसमें महाराष्ट्र का कुपोषित विदर्भ इलाका भी शामिल है।

आज भारत में कई ऐसे इलाके हैं जहाँ न सिर्फ तापमान में बढ़ोतरी देखी जा रही है बल्कि ये भी देखने में आ रहा है कि स्थानीय आबादी, जलवायु परिवर्तनों से निपटने में सामाजिक और आर्थिक रूप से कितनी सक्षम हैं। करीब 15 करोड़ लोग, इन अत्यधिक संवेदनशील इलाकों में रहते हैं, अगर इन इलाकों के हालात बद से बदतर हुए तो भारत के सकल घरेलू उत्पाद में हजारों अरब डॉलर का नुकसान हो सकता है।

स्थिति ये है कि वायु की गुणवत्ता, जैव विविधता और ग्रीन हाउस उत्सर्जन के मामलों पर अपेक्षित सुधार न कर पाने के कारण भारत वैश्विक पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक में निचले पायदान पर है। स्टेट ऑफ इंडिया एन्वायरनमेंट (एसओई) की रिपोर्ट में कहा गया है कि आज भारत में वायु गुणवत्ता चिंताजनक स्तर पर है। सौ में से उसे इसके लिए 5.75 अंक ही मिले हैं।

पानी की बात करें तो हर घर जल योजना का लक्ष्य था-सन् 2030 तक भारत के हर घर को पेयजल मुहैया कराना। टिकाऊ विकास लक्ष्यो में ये योजना शामिल है लेकिन अभी भी कई राज्यों के करीब 80 फीसदी ग्रामीण घरों में पीने के पानी की लाइन ही नहीं

है। भूजल प्रदूषित हो रहा है और उसकी गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। स्वच्छता के संबंध में हम सिर्फ शौचालयों के निर्माण में लगा रहे हैं। संपूर्ण स्वच्छता एवं सफाई के प्रति न सरकारें चिंतित हैं और न ही लोग जागरुक। प्लास्टिक और कचरे के ढेरों के निस्तारण को लेकर शहरों और नगरपालिकाओं के पास त्वरित और ठोस कार्ययोजना का अभाव है।

नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल की आपत्तियों और फटकार के बावजूद पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले निर्माण जारी हैं। पेड़ों और जंगलों की कटाई बदस्तूर जारी है- इसका ताजा उदाहरण उत्तराखण्ड की चारधाम ऑल वेदर रोड परियोजना है। रही-सही कसर, वाहनों की संया में बढ़ोत्तरी से फैलते प्रदूषण और जंगलों की आग ने पूरी कर दी है। पिछले एक दशक में जलवायु परिवर्तन की मार के चलते इसमें तेजी आई है। बाढ़, सूखे और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण इसकी रतार बढ़ी है। विशेषज्ञों ने आशंका जतायी है कि आने वाले वर्षों में भारत में आंतरिक विस्थापन तो बढ़ेगा ही, जलवायु परिवर्तन की गति तेज होने के साथ ही पड़ोसी देशों से भी यहाँ आने वाले लोगों की तादाद भी तेजी से बढ़ेगी। मौसम विज्ञानियों के अनुसार मौसम के बदलते मिजाज के साथ प्राकृतिक आपदाओं का अंतराल कम होने की स्थिति में विस्थापन उसी अनुपात में तेजी से बढ़ने का अनुमान है।

पर्यावरण या ग्लोबल वार्मिंग जैसे मुद्दे तात्कालिक लाभ-हानि के पैमाने पर खरे नहीं उतरते, इसलिए इन पर ध्यान नहीं दिया जाता है। नए शोध के अनुसार जलवायु परिवर्तन से अर्थव्यवस्था को काफी नुकसान हो रहा है। पृथ्वी के तापमान में लगातार बदलाव ने दुनिया भर की अर्थव्यवस्था में असमानता बढ़ाई है। आईपीसीसी की रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक तापमान बढ़ने से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले देशों में भारत भी एक है, भारत जैसे कृषिआधारित अर्थव्यवस्था वाले देशों को वैश्विक तापमान के दुष्प्रभाव की वजह से गर्म हवा, बाढ़ व सूखे का सामना करने के साथ ही पानी और खाद्यान्नों की कमी से भी जूझना पड़ेगा, जिससे गरीबी बढ़ेगी और भोजन व जीवन के लिए असुरक्षा उत्पन्न हो जायेगी। भारत में तो हर साल उसकी जीडीपी का 1.5 प्रतिशत का नुकसान हो रहा है।

भारत सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ को सन् 2015 में जो दस्तावेज सौंपा गया था, उसमें ग्लोबल वार्मिंग के जिमेदार गैसों के उत्सर्जन कम करने के लिये सन् 2030 तक 33-35 प्रतिशत कम करने का लक्ष्य तय किया गया था। इसमें समस्या यह है कि यह कार्बन की वास्तविक मात्रा में कमी न होकर सकल घरेलू उत्पाद की प्रति इकाई से हो रही उत्सर्जन के आनुपातिक मात्रा में कमी है क्योंकि भारत का सकल घरेलू उत्पाद सन् 2030 तक वर्तमान से कई गुना अधिक होने वाला है।

ये ही कारण है कि आनुपातिक रूप से उससे उत्सर्जन अगर 33 प्रतिशत भी कम हो जाये तब भी कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन की कुल वास्तविक मात्रा सभवतः दोगुना होकर 500-600 करोड़ टन हो जाएगी। यह निश्चित रूप से पृथ्वी की कार्बन डाइऑक्साइड सोखने की क्षमता का एक बड़ा हिस्सा है। लगातार विशाल गरीब वर्ग के कम खपत के पीछे छिपकर यह कहा जा रहा है कि भारत की उत्सर्जन मात्रा कम है जबकि देश में सभी स्रोतों से ऊर्जा की खपत में बेतहाशा वृद्धि को प्रोत्साहन दिया गया है। वह भी अमीर वर्गों के उपभोग के लिए- जिससे कि कार्बन उत्सर्जन में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है।

ऐसे में सवाल उठता है कि आखिर इतनी लचर एवं कमजोर नीतियों से क्या हम अपने लक्ष्य को पूरा कर पाएंगे और यदि नहीं तो आने वाले संकट के लिए जिमेदार कौन होगा? सरकार का दायित्व है कि वे आपात स्तर पर जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कार्यवाही सुनिश्चित करे। उसे दो स्तरों पर ऐसा करना चाहिए। एक तो तत्काल हल तलाश कर उन्हें तुरंत अमल में ले लाना चाहिए और दूसरा दीर्घकालीन अवधि की योजनाओं पर काम शुरू कर देना चाहिए।

अब सिर्फ नीतियाँ बनाने से काम नहीं चलेगा बल्कि उनका अमल भी सुनिश्चित करना होगा नहीं तो भारत का आर्थिक विकास ऐसे ही प्रभावित होता रहेगा। न्यायपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक सरकारी नीतियाँ देश के अधिकतर गरीब लोगों को जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने हेतु सक्षम बनाने के लिए जरूरी हैं। इस कार्य के लिए जनजागरण भी आवश्यक है। जलवायु के प्रति सचेष्ट एवं सजग रहने के लिए जन अभियान चलाने की जरूरत है। इन्हीं माध्यमों से इस गंभीर समस्या का समय रहते समाधान संभव है।

• • •

धर्म और विज्ञान का समन्वय एवं वैज्ञानिक अध्यात्म

विज्ञान और धर्म बाहर से देखने में अस्तित्व के दो ध्रुवों के समान अर्थात् एक दूसरे के विरोधी लगते हैं। पश्चिमी परपरा में वस्तुतः दोनों इसी भूमिका में रहे भी। विज्ञान के बढ़ते चरणों को पश्चिम के धर्म ने कुचलने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसकी अवमानना, प्रताड़ना की गई, यहाँ तक कि वैज्ञानिक खोजों के आधार पर धर्म की मान्यताओं को चुनौती देने वाले वैज्ञानिकों को सूली पर चढ़ाया गया। कॉपरनिकस से लेकर ब्रूनो एवं गैलीलियो तक इसका लबा रक्तरंजित इतिहास रहा है।

इस विरोध के बावजूद विज्ञान अपने नैष्ठिक पगों के साथ सत्य अनुसंधान के पथ पर आगे बढ़ता रहा। हालाँकि इसके प्रयास भौतिक जगत तक सीमित रहे, लेकिन इसकी उपलब्धियाँ एवं खोजें मानव जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने लगीं। स्टीम इंजन की खोज से लेकर विद्युत एवं रेडियो-टीवी तरंगों की खोजों ने औद्योगिक क्रांतियों को जन्म दिया, जो आज इंटरनेट की खोज एवं संचार क्रांति के साथ नए शिखर को छू रही है।

जीवन को उपयोगी बनाने तथा इसमें क्रांतिकारी बदलाव के साथ विज्ञान ने जनता को अपना मुरीद बना दिया। वैज्ञानिक खोज एवं वैज्ञानिक वर्चस्व के आगे समय के साथ धर्म के विरोधी स्वर मंद पड़ते गए, यहाँ तक कि वह रक्षात्मक स्थिति में आ गया। आज आलम यह है कि बिना वैज्ञानिक स्वीकृति के धर्म को प्रबुद्ध वर्ग के बीच अपने वर्चस्व को स्थापित करना कठिन पड़ रहा है।

वस्तुतः पश्चिम में दोनों ध्रुव एक दूसरे को संशय की दृष्टि से देखते रहे तथा एक दूसरे पर गंभीर आरोप लगाते रहे। धर्म को अंधविश्वास एवं हिंसा को फैलाने वाला, कट्टरपंथ को बढ़ावा देने वाला तथा प्रगतिशील सोच का विरोधी माना जाता रहा। इसी तरह विज्ञान को श्रद्धाहीन, नास्तिक, जीवन के मूल्यों को नकारने वाला कहा जाता रहा तथा अपने आविष्कारों के दुरुपयोग के साथ मानवीय अस्तित्व तक को खतरे में डालने वाला माना जाता रहा। यह पश्चिम में धर्म और विज्ञान की व्यापक स्थिति रही है, जो जीवन के दो ध्रुव की तरह प्रतीत होते रहे, जिनका मिलन कहीं से संभव नहीं दिखता रहा।

इसके विपरीत में भारत में स्थिति भिन्न रही। यहाँ धर्म और विज्ञान के बीच कभी विरोध नहीं रहा। यहाँ की सर्वसमावेशी सोच में सबके लिए स्थान रहा। विरोधी विचारधाराऐं तक यहाँ एक साथ पनपती रहीं। आश्चर्य नहीं कि यहाँ चार्वाक जैसे घोर भौतिकवादी, भोगवादी एवं नास्तिक दर्शन तक को मान्यता दी गयी। कई नास्तिक दर्शन यहाँ एक साथ पनपते रहे। यहाँ कितने ही आध्यात्मिक शिखर पर आरूढ़ लोगों को वैज्ञानक प्रयोगों में संलग्न देखा जा सकता है। यहाँ तक कि अंग्रेजों के आगमन के बाद भी वहाँ की तर्कप्रधान शिक्षा इस समृद्ध परपरा की जड़ों को नहीं हिला सकी।

भारत में पश्चिमी शिक्षा में दीक्षित एवं इससे अत्यधिक प्रभावित बुद्धिजीवियों का एक वर्ग ऐसा भी रहा, जो भारतीय परपरा, इसकी चिंतन प्रणाली से अनभिज्ञ होने के कारण धर्म और विज्ञान को दो ध्रुव मानता रहा व संभावित भेदों का समन्वय उनकी सोच-समझ से परे रहा। ऐसे शुष्क बुद्धिजीवी आज भी धर्म एवं अध्यात्म शब्द से बिदकते हैं और इन्हें समाज के लिए घातक शब्द मानते हैं। इन्हें ये सर्वथा वैज्ञानिक सोच से हीन मानते हैं। इन्हें पोंगापंथी, अंधविश्वास एवं कपोल कल्पना में जीने का नाम समझाते हैं। कार्ल मार्क्स द्वारा दी गयी उक्ति- धर्म अफीम की गोली है - उसको, ये आज भी दुहराते देखे जा सकते हैं।

निसंदेह रूप में धर्म और विज्ञान दोनों की अपनी सीमाऐं भी हैं तथा ऐतिहासिक विकास क्रम में इनसे महान चूकें भी हुई हैं। वैश्विक स्तर पर धर्म के नाम पर हुए युद्ध, कत्लेआम, अत्याचारों की लबी श्रृंखला एवं इतिहास रहा है। इसी तरह विज्ञान इंसान को

कैसे संवेदनहीन, अनैतिक, मूल्यहीन एवं खतरनाक बना सकता है- यह भी सामने आ रहा है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दो विश्वयुद्धों में हुए व्यापक ध्वंस एवं नरसंहार में विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी का भरपूर दुरुपयोग किया गया था। हिरोशिमा-नागासाकी में परमाणु बम की लोमहर्षक घटना भी कोई भूला नहीं है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण एवं परिस्थितिकीय असंतुलन के कारण आज समूची धरती का अस्तित्व खतरे में है।

धर्म और विज्ञान दोनों के उज्जवल पक्ष भी हैं। मानवता के लिए दोनों के गहरे अवदान भी रहे हैं। इस रूप में धर्म और विज्ञान दोनों परस्पर विरोधी प्रतीत होते हुए भी इंसान के लिए आवश्यक हैं। विज्ञान जहाँ मानवीय जीवन को अधिक सुख-सुविधाजनक बना रहा है, इसकी प्रगति को गति दे रहा है, तो वहीं धर्म व्यक्ति को अधिक संवेदनशील, उदार एवं आंतरिक रूप से सशक्त बनाता है। यदि दोनों का मिलन हो सके तो ये मानव जाति के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं। दोनों की सीमाओं को देखते हुए आइंस्टाईन की यह उक्ति सही जान पड़ती है कि बिना धर्म के विज्ञान अंधा है और बिना विज्ञान के धर्म पंगु है। इस तरह अंधे और पंगु की जोड़ी का साथ मिलकर चलना मानव हित में है तथा धर्म एवं विज्ञान का समन्वय अभीष्ट भी है।

आइंस्टाईन से पूर्व युगनायक स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो के विश्व धर्म समेलन में धर्म और विज्ञान के समन्वय का युगान्तरकारी उद्घोष किया था। जिसके बाद दोनों पक्षों के कितने ही प्रबुद्ध लोगों ने इस कार्य को आगे बढ़ाने में कार्य किया। आइंस्टाईन, हाईजनवर्ग, कार्लजुंग, जगदीशचंद्र बसु, पॉल ब्रंटन, केन विल्वर, फिट्जोप काप्रा, डॉ. अब्दुल कलाम आजाद जैसे वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं गुह्यवादियों ने अपने-अपने स्तर पर इस कार्य को आगे बढ़ाया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की वैश्विक स्थिति को देखते हुए युगऋषि पं.श्रीराम शर्मा आचार्य ने सन् 1947 की अखण्ड ज्योति में वैज्ञानिक अध्यात्म की उद्घोषणा की थी और यह पत्रिका इसकी संवाहक बनी। आगे साठ, सत्तर के दशकों में इसके विशेषांक प्रकाशित हुए और विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय को लेकर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना हुई, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय को लेकर कई प्रयोग सपन्न हुए। इसी शोध संस्थान का विस्तार देव संस्कृति विश्वविद्यालय आज इसी आधार पर वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण को लेकर काम कर रहा है, जिसके हर पाठ्यक्रम में युगीन समस्याओं के वैज्ञानिक, प्रगतिशील एवं व्यवहारिक समाधान को प्रस्तुत होते देखा जा सकता है।

आह्वान है ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का, योग्य एवं भावनाशील शिक्षकों का जो इस अविनव प्रयोग का हिस्सा बनना चाहते हैं तथा अपने अपने क्षेत्र में इस विषय पर शोध-अनुसंधान कर अपना योगदान देना चाहते हैं। यह कौरा बौद्धिक उछलकूद भरा प्रयोग नहीं है, इसकी प्रयोगशाला व्यक्ति के तन-मन से शुरु होकर व्यक्तित्व का परिष्कार करते हुए परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्वमानव को अपनी परिधि में समेटे हुए है, जिसके आधार पर युगऋषि की मनुष्य में देवत्व के उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण की संकल्पना मूर्त आकार लेगी तथा इक्सीसवीं सदी उज्जवल भविष्य का नारा साकार होगा।

• • •

भाग्योदय, वरदान और अनुग्रह-उदारता-अनुकपा के नाम पर बहुत कुछ पाने की इच्छा की जाती है पर यह सब मिलकर भी ओसकणों से अधिक और कुछ नहीं बनता। मोती तो पसीने से टपकते हैं। दौलत तो हाथ खोदते हैं। प्रगति के लिए हिमत से कम में गुजारा नहीं। सरंजाम कोई कितना ही इकट्ठा क्यों न कर ले पर उसे सुव्यवस्थित और सुनियोजित किये बिना उसको रूठने और पलायन करने से रोका नहीं जा सकता। शक्ति की महिमा-महत्ता तो बहुत है, पर वह उसी के पास ठहरती है जो उसके सुसंचालन की विद्या से परिचित है। -परमपूज्य गुरुदेव

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार–137

मनोयौगिक अन्तःक्षेपों का अध्ययन

युवाओं में बढ़ती मानसिक समस्यायें और व्यक्तित्व को विकृत करने वाली अनेक जीवन शैली सबन्धित बीमारियाँ गभीर चिन्ता का विषय हैं। वर्तमान सन्दर्भ में युवा जीवन पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा, रोजगार, वातावरण, सबन्धों आदि अनेक मोर्चों पर उनको संघर्ष करना पड़ रहा है। फलस्वरुप चाहे-अनचाहे वे तनाव, चिन्ता, द्वन्द्व, अवसाद, विक्षोभ व भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याओं से ग्रस्त होते जा रहे हैं।

स्वस्थ, सफल और प्रसन्न जीवन के लिए हमें शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक क्षमताओं में सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक होता है परन्तु आधुनिक जीवनशैली, प्रतिस्पर्धी वातावरण, कैरियर, आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा आदि कारणों से वर्तमान की युवा पीढ़ी अनेक मनोदैहिक एवं भावनात्मक समस्याओं से घिर चुकी है।

युवा ऐसी किसी समस्या से ग्रस्त न हो एवं वह अपने समय, सामर्थ्य और योग्यता का सकारात्मक एवं सार्थक समायोजन कर सके; इस उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अन्तर्गत सन् 2019 में एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य सपन्न किया गया है। यह शोध, शोधार्थी प्रणव तिवारी द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रतिकुलपति के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अध्ययन का विषय है- 'चयनित मनोवैज्ञानिक चरों पर मनोयौगिक अन्तःक्षेप का प्रयोगात्मक अध्ययन'।

शोधार्थी ने अपने प्रयोग में उत्तराखण्ड राज्य के हरिद्वार, ऋषिकेश और देहरादून से 18 से 25 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं का आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया। इनमें महिला एवं पुरुष का अनुपात समान रखते हुये 120-120 के दो समूहों में वर्गीकृत कर अपना प्रयोग आरभ किया। सर्वप्रथम सभी चयनित युवाओं का शोध उपकरणों के माध्यम से परीक्षण किया गया।

परीक्षण में जिन उपकरणों का उपयोग किया गया, वे हैं- सिन्हा कॉग्निहेन्सिव एन्जाइटी टेस्ट (ए0के0पी0 सिंह एवं एल0एन0के0 सिन्हा द्वारा निर्मित) तथा इमोशनल इंटिलेजेन्स स्केल (उपेन्द्र धर, सन्जोत व अनुरुल द्वारा निर्मित)।

प्रथम परीक्षण के पश्चात् शोधार्थी द्वारा प्रयोगात्मक समूह पर छः माह की अवधि तक प्रतिदिन अध्ययन में समिलित मनोयौगिक प्रक्रियाओं का 30 मिनट अयास कराया एवं सप्ताह में एक दिन आध्यात्मिक परामर्श प्रदान किया गया। मनोयौगिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत जिन विशिष्ट यौगिक तकनीकों को समिलित किया गया, वे निन हैं- 1. सूर्य नमस्कार- दो आवृत्ति, पाँच मिनट, 2. प्राणाकर्षण प्राणायाम-दस आवृत्ति, बीस मिनट, 3. हनुमान चालीसा-एक आवृत्ति, पाँच मिनट एवं 4. आध्यात्मिक परामर्श-एक आवृत्ति प्रति सप्ताह, पन्द्रह मिनट।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की ही भाँति सभी चयनित लोगों का पुनः परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांयिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने यह पाया कि शोध अध्ययन में प्रयुक्त मनोयौगिक प्रक्रियाओं का युवाओं के चिन्ता स्तर एवं संवेगात्मक बुद्धिमता स्तर पर सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्ययन में परिणामस्वरूप सार्थकता व सकारात्मकता के लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले कारकों में मुय भूमिका मनोयौगिक प्रक्रियाओं की है।

इन यौगिक एवं आध्यात्मिक विधियों का स्वास्थ्य संरक्षण एवं चिकित्सा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी पक्ष को उजागर करना- इस शोध की एक बड़ी उपलब्धि है। शोधार्थी ने अपने प्रयोग में जिन मनोयौगिक तकनीकों को प्रयुक्त किया है; वे समिलित रूप से ही नहीं अपितु अलग-अलग स्वतंत्र विधियों के रूप में भी अत्यन्त विशिष्ट और लाभकारी तकनीकें हैं जो सपूर्ण स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

अध्ययन में अपनाई गई पहली यौगिक विधि है- सूर्य नमस्कार। सूर्य नमस्कार को स्वयं में एक पूर्ण साधना कहा जाता है। इसमें आसन, प्राणायाम, मंत्र और ध्यान की विधियों का समन्वय है। इसका उद्देश्य शरीर एवं मन में स्थिरता, शांति, लचीलापन और दृढ़ता का विकास करना है। इसके नियमित अयास से शरीर निरोग बनता है और साथ ही व्यक्ति मानसिक संतुलन बिगाड़ने वाले अवांछित विचारों तथा भावनाओं से समय रहते मुक्ति पा लेता है। इस विधि को आध्यात्मिक दृष्टि से भी मन को रूपान्तरित करने का सशक्त साधन माना जाता है। इस अध्ययन के परिणामों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य नमस्कार का युवाओं के चिन्ता स्तर को कम करने एवं संवेगात्मक बुद्धि के स्तर को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

दूसरी यौगिक प्रक्रिया है- प्राणाकर्षण प्राणायाम। चिन्ता एक मानासिक वृत्ति है परन्तु इसका सीधा असर शरीर पर, जैसे- हृदय गति, नाड़ी गति, श्वसन आदि पर भी पड़ता है। प्राणायाम की विधि में श्वास-प्रश्वास का अयास कर शारीरिक स्थिति में संतुलन और स्थिरता लायी जाती है जिसका असर मानसिक वृत्तियों पर भी सकारात्मक रूप से पड़ता है और चिन्ता आदि समस्याओं से छुटकारा पाने में सहयोग प्राप्त होता है।

अनेक वैज्ञानिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि प्राणायाम से शरीर और मन-दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शरीरक्रियाविज्ञान की दृष्टि से प्राणाकर्षण प्राणायाम के नियमित अयास से अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिका तंत्र में सन्तुलन स्थापित होता है जिससे तनाव का स्तर घटने से चिन्ता के स्तर में कमी होने लगती है। साथ ही रासायनिक स्तर पर हार्मोन्स व न्यूरोट्रांसमीटर्स में भी महत्त्वपूर्ण विधेयात्मक परिवर्तन होते हैं। शरीर में ऐसे हार्मोन्स का स्राव स्तर बढ़ जाता है जिनसे मन में प्रसन्नता और खुशी में वृद्धि होती है। युवाओं के लिए इसका अयास न केवल चिन्ता, तनाव को दूर करने में सहायक है वरन् समग्र स्वास्थ्य के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

अध्ययन की तीसरी विशिष्ट यौगिक प्रक्रिया है- हनुमान चालीसा। युवाओं के चिन्ता स्तर को कम करने एवं संवेगात्मक बुद्धि के स्तर को बढ़ाने में हनुमान चालीसा का नियमित पाठ एक अत्यन्त प्रभावशाली साधना है। इसके पाठ से आत्मबल, सुरक्षा और भक्ति की भावना का संचार होता है। यह प्राण ऊर्जा के संवर्द्धन और नकारात्मकता को दूर करने की प्रभावकारी विधि है। इसके नियमित अयास से तनाव एवं चिन्ता स्तर घटने लगता है। वैज्ञानिक दृष्टि से हनुमान चालीसा के पाठ से एड्रीनेलिन के स्राव स्तर में कमी आने से मन शान्त एवं स्थिर होता है, जिससे चिन्ता स्तर में कमी आने लगती है। पाठ में हनुमान जी के व्यक्तित्व गुणों के प्रति भक्ति भावना का संचार भावनात्मक संतुलन और दृढ़ता प्रदान करता है।

मनोयौगिक अयास की चतुर्थ प्रक्रिया है- आध्यात्मिक परामर्श। मनोवैज्ञानिक उपचार में परामर्श एक प्रभावकारी तकनीक है। परामर्श एक ऐसी विधि है जिसमें परामर्शदाता समस्याग्रस्त व्यक्ति की परेशानी को धैर्यपूर्वक सुनता है और तदुपरांत उसे आवश्यक सुझाव, सलाह एवं मार्गदर्शन प्रदान करता है। आध्यात्मिक परामर्श आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधृत होती है।

आध्यात्मिक परामर्श का लाभ यह है कि इसमें पीड़ित व्यक्ति की दृष्टि और समझ व्यापक होती है जिसके माध्यम से वह अपनी समस्या को व्यापक ढंग से समझ पाता है। साथ ही उसकी विसंगत भावनायें परामर्शदाता के सामने अभिव्यक्त हो जाती हैं, जिससे व्यक्ति तनावमुक्त महसूस करता है। परामर्शदाता पीड़ित को परेशानी से मुक्ति हेतु सुझाव व मार्गदर्शन प्रदान करता है, जिसके मूल में अध्यात्म के सिद्धांत होते हैं। अध्यात्म कभी भी, कहीं भी नकारात्मक होना नहीं सिखाता। इसमें सदैव सन्मार्ग, सत्कर्म, सद्चिन्तन, सद्व्यवहार के लिए प्रेरणायें होती हैं जिनसे चिन्ता, तनाव, अवसाद दूर ही रहते हैं।

इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से ऐसे अनेक कारक हैं, जिनके कारण मनोयौगिक अयासों का नवयुवाओं के चिन्ता एवं संवेगात्मक बुद्धि स्तर पर सार्थक प्रभाव पड़ता है और उनके मानसिक स्तर के साथ-साथ समग्र स्वास्थ्य का संवर्द्धन होता है। • • •

असतां शीलमेतद्वै परिवादोऽथ पैशुनम्।
अर्थात् दुर्जनों का स्वभाव ही निन्दा व चुगलखोरी करना है।

साधनों से नहीं, साधना से मिलता है शाश्वत सुख

वर्षों की तप साधना के बाद आखिरकार सिद्धार्थ को बोध प्राप्त हुआ और वे गौतम बुद्ध बने, महात्मा बुद्ध बने। ज्ञान की प्राप्ति के बाद वे जगह-जगह उपदेश देने लगे। बौद्ध धर्म में दीक्षित बौद्ध भिक्षु बुद्ध के साथ भ्रमण किया करते थे। बुद्ध के उपदेश बड़े ही मार्मिक और प्रभावी हुआ करते थे और उनके उपदेशों का जनमानस पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके उपदेशों को सुनकर कोटिशः लोगों ने एक नई जिन्दगी, एक आनंदमयी जिंदगी जीनी शुरू कर दी थी।

एक बौद्ध कथा के अनुसार एक बार बुद्ध कहीं उपदेश दे रहे थे। उनके उपदेश को सुनने एक राजा भी आये हुये थे। जब बुद्ध के उपदेश समाप्त हुये तो वह राजा उनसे मिलने पहुँचे। राजा ने कहा- भगवन! आपके पास सुख-सुविधा के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं। आपके साथ चलने वाले बौद्ध भिक्षुओं के पास भी कोई सुख साधन नहीं हैं। फिर भी मैं देखता हूँ कि आपके बौद्ध भिक्षु आपकी तरह ही हमेशा शांत चित्त और प्रसन्नचित्त रहते हैं।'

राजा आगे बोले कि- 'आपके बौद्ध भिक्षु सदा आनंदित रहते हैं पर दूसरी ओर मेरे राजकुमार जो मेरे साथ राजमहल में रहते हैं और जिनके पास सारे सुख साधन, ऐशो-आराम की चीजें उपलब्ध हैं, फिर भी वे कभी सुखी और आनंदित नहीं रहते। मेरे राजकुमार के पास तो नौकर-चाकरों की पूरी फौज है फिर भी वे कभी खुश नहीं दीखते। वे हमेशा ही तनाव और परेशानी से घिरे हुये रहते हैं। मैंने तो उन्हें हर तरह की सुख-सुविधा देकर देख ली पर फिर भी वे कभी सुखी नहीं हो पाये पर आपके भिक्षु जो पदयात्रा करते हैं जिन्हें खाने को जो भी रूखा-सूखा मिले, खा लेते हैं, सोने को जहाँ भी मिले, सो लेते हैं पर साधनविहीन, सुख-सुविधाओं का अभाव होते हुये भी वे सदा प्रसन्नचित और आनंदित दीखते हैं। इसका कारण क्या है भगवन!'

बुद्ध बोले- 'राजन! खुशियाँ, साधनों से नहीं साधना से मिलती हैं। खुशियाँ, साधनों में नहीं साधना में होती है। खुशियाँ, साधनों को पाने में नहीं उनका परित्याग करने से मिलती हैं। जिसने संकल्प करके सब कुछ छोड़ दिया, वास्तव में वही खुश रह सकता है क्योंकि तप साधना के द्वारा जब व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित कर लेता है, अपने मन को जीत लेता है तब उसके स्वयं के अंदर से ही खुशियों का एक शाश्वत स्रोत शुरू हो जाता है जो कभी समाप्त ही नहीं होता।'

भगवान बुद्ध राजा से बोले- 'इसलिये साधनविहीन होते हुये भी व्यक्ति आनंद में डूबा रहता है और वह आनंद उसके स्वयं के अंदर से ही प्रस्फुटित होता है और हाँ! जो स्वेच्छा से चीजों का त्याग करता है, सुख-सुविधाओं का त्याग करता है, साधनों का त्याग करता है- वह ही हमेशा प्रसन्न रह सकता है। सुख-सुविधा की दृष्टि से देखें तो अत्यंत गरीब व्यक्ति के पास भी कुछ खास नहीं होता पर फिर भी वह प्रसन्न नहीं होता। क्यों?'

स्वयं द्वारा पूछे गए इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान बुद्ध आगे बोले- 'क्योंकि उसने तो कुछ छोड़ा ही नहीं है और न ही उसके पास छोड़ने को कोई सुख-साधन ही है। वह तो अभाव में ही जीवन जी रहा है। वह तो सुख-सुविधाओं को पा लेने की आस में ही बैठा है और इसलिये वह हमेशा दुःखी और अशांत ही रहता है पर जिसने जानबूझकर सुख-सुविधाओं का त्याग किया है, अपनी इच्छाओं का त्याग किया है वह अवश्य खुश रह सकता है तो यहाँ दो महत्त्वपूर्ण चीजें हैं। एक है छोड़ना और दूसरी है छूटना।'

भगवान बुद्ध ने कहा- 'राजन्! आपके राजकुमार के पास सारी सुख-सुविधायें हैं पर उनके मन में उन सुख-सुविधाओं के छूट जाने का डर है। छूट जाना और छोड़ देना, दोनों में अंतर है। छूट जाना या छूट जाने की सोच हमें डराती है, हममें

भय पैदा करती है और जो मन भय से भरा है वह सुखी या प्रसन्न कैसे रह सकता है? जबकि छोड़ देना या छोड़ देने का संकल्प लेना आपको निर्भय करता है, निर्द्वन्द्व करता है और आपको आत्मविश्वास और आनंद से भर देता है क्योंकि यहाँ कुछ छूटने का भय ही नहीं रहा, कुछ पाने की चाहत ही नहीं रही।'

भगवान बुद्ध आगे बोले- 'सुख-साधनों से हमें क्षणिक इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त हो सकता है पर शाश्वत आनंद तो स्वतंत्र मन से, स्वेच्छा से त्याग देने से ही मिलता है। उसे तब सुख-साधनों के छूट जाने का भय ही कहा रह जाता है। उसे साधनों की सुरक्षा की चिंता ही कहाँ सताती है।' राजा को अपने प्रश्न का समाधान मिल गया था। शाश्वत सुख और आनंद त्याग में है, साधना में है, साधनों में नहीं, सुख-सुविधाओं में नहीं।

• • •

अयोध्या के विशाल गौरवमय साम्राज्य के अधिपति थे महाराज चक्कवेण। वे जितने रणकुशल थे, उतने ही नीतिकुशल। न्यायनिष्ठ एवं परम उदार थे महाराज। भगवान नारायण की भक्ति एवं सहज निःस्पृहता उनका स्वभाव था। जहाँ राजन्यवर्ग एवं राजपुरुषों की महत्त्वाकांक्षाओं की चर्चा होती है व उनकी विलासिता, ऐश्वर्य एवं वैभव का बखान किया जाता है, वहीं उस युग में महाराज चक्कवेण के तप एवं ज्ञान की कथाएँ कहीं जाती थीं। चर्चा इस बात की होती थी कि इतने महासाम्राज्य का अधिपति झोपड़ी में रहता है और थोड़ी सी खेती करके अपनी गुजर-बसर करता है। सचमुच ऋषियों एवं मुनियों के भी आदर्श थे महाराज चक्कवेण।

एक बार उनके महामंत्री ने उनसे अनुरोध किया- राजन! अन्य राजागण अपने जीवन की प्रत्येक क्रिया में ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं। इतना ही नहीं वे आपस की चर्चा में यह व्यंग्य भी करते हैं कि तुहारा राजा दरिद्र है। महामंत्री के इस कथन पर महाराज थोड़ी देर चुप रहे और फिर बोले मंत्रीवर! यह सच है कि एक अर्थ में मैं दरिद्र हूँ, पर एक अर्थ में वे महादरिद्र हैं। मैं अपनी सभी लौकिक सपदा को अपनी प्रजा की सेवा में लगा चुका हूँ, परन्तु इसी के साथ मैंने सत्कर्म-सद्भाव व सद्ज्ञान की सपदा पायी है। कोई इस सत्य पर विचार कर सकता हो तो वह जान सकता है कि सेवा से श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है। जब हृदयपूर्वक सेवा की जाती है, जब हृदय दूसरों के दुःख से विदीर्ण होना सीख जाता है, तब व्यक्ति के एक नये व्यक्तित्व का जन्म होता है। परदुःख से जब हृदय विदीर्ण होता है, तब व्यक्तित्व की सीमाएँ भी विदीर्ण होती हैं। व्यक्तित्व में पनपती है एक परम व्यापकता। स्वचेतना में परमचेतना समाती है। नारायण का भक्त भी अपने भगवान की तरह व्यापक हो जाता है और ऐसे में निजी लाभ-लोभ की कामनाएँ चित्त से उसी तरह से झड़ जाती हैं जैसे कि पतझड़ आने पर पेड़ से सूखे पत्ते। मेरे अंतःकरण की स्थिति कुछ ऐसी ही हो गयी है। जैसे अन्य राजाओं को विलासिता में, ऐश्वर्य में सुख मिलता है, उसी तरह बल्कि उससे कई गुना अधिक सुख मुझे मिलता है-जनजीवन की सेवा में। सेवा में मिलने वाला प्रत्येक कष्ट मुझे गहरी तृप्ति देता है। प्रत्येक दिन मेरे द्वारा जो भावभरे हृदय से सत्कर्म किये जाते हैं, मन से जो जनता की भलाई के लिए योजनाएँ बनायी जाती हैं, इसके लिए सद्चिंतन किया जाता है, वही उस दिन की सार्थकता है।''

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

दिशा खोजती युवा पीढ़ी

किसी भी देश की असली ताकत उसके युवाओं में समाहित है। युवा पीढ़ी में ही वह शक्ति निहित है, जो किसी भी तरह का परिवर्तन कर पाने में सक्षम होती है। इसलिए जब किसी भी मोड़ पर मानव सयता को अपने अस्तित्व के लिए एक नई दिशा की जरूरत पड़ी, तो उसने अपनी युवा पीढ़ी की ओर निहारा और युवा पीढ़ी ने भी अपने दायित्व को समझते हुए परिवर्तन का, बदलाव का बीड़ा अपने कंधों पर उठाया।

युवाओं में दो तरह के खास गुण होते हैं। पहला तो उनमें इतनी स्फूर्ति व ऊर्जा होती है कि वे कुछ नया करके दिखा सकें और दूसरा यह कि उन्हें अपनी जीवन में इतनी ठोकरें नहीं मिली होती हैं कि वे अपने जीवन से निराश हो जाऐं और प्रयास करना ही छोड़ दें। तात्पर्य यह है कि युवा पीढ़ी के अन्दर कुछ कर गुजरने की ताकत होती है कि यह ताकत ही उनसे कुछ नया करवा लेती है और उनके कार्यों से दुनिया इतनी चमत्कृत होती है कि उनकी प्रतिभा व उसके कार्यों के समक्ष वह अपना मस्तक झुका देती है अर्थात् उनका खुले दिल से स्वागत करती है।

युवा पीढ़ी के अन्दर वह शक्ति होती है, जिसके कारण वह अन्याय को स्वीकार नहीं कर पाती बल्कि उसके प्रति विद्रोह कर देती है और यही कारण है कि विश्व में जब कभी किसी क्रांति या बदलाव की जरूरत आन पड़ी, तो नौजवानों ने ही आगे बढ़कर मोर्चा संभाला है। इतिहास की ओर यदि दृष्टि डाली जाए, तो ऐसे अनगिनत उदाहरण देखने को मिलेंगे, जो यह बताते हैं कि युवा पीढ़ी में से ही किसी एक ने समाज में होने वाले बदलावों में अपनी मुय भूमिका निभायी है।

आज दुनिया का कोई भी देश यदि बीते काल को पीछे छोड़कर एक नयी ऊर्जा के साथ अपना वर्तमान जी रहा है, तो इसका श्रेय युवा पीढ़ी को ही जाता है। उसकी स्फूर्ति और उसके कार्य करने की सदिच्छा को यदि सही मौका मिल सके, तो युवा पीढ़ी कुछ ऐसा अच्छा कर सकती है, जो अविस्मरणीय व प्रशंसनीय होता है, लेकिन जब-जब इसे गलत दिशा दी जरती है, तो यह देश व समाज के लिए विनाशकारी साबित होती है।

आज भारत युवा शक्ति के मामले में दुनिया में सबसे आगे है। बस केवल हमें युवा शक्ति को सही राह दिखाने की जरूरत है। भारतीय युवा पीढ़ी सकारात्मक होने के साथ-साथ मेहनती है, लेकिन देश में अनेक ऐसे उपद्रवी तत्व भी मौजूद हैं, जो इस युवा पीढ़ी की शक्ति को गलत दिशा में लगाना चाहते हैं और कई बार इसमें सफल भी हो जाते हैं। जैसे हमारे देश में जो नक्सलवाद, आतंकवाद पनप रहा है, उसमें भी युवा पीढ़ी ही कार्यरत है, जो अपनी दिशा से भटक चुकी है।

किसी भी व्यक्ति को भटकाना तभी संभव है, जब मानसिक स्तर पर उसे इतनी गहराई से प्रभावित किया जाए, इस तरह से समझाया जाए कि फिर वह कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाए। नक्सलवाद व आतंकवाद को प्रश्रय देने वाले संगठन भी अपने लोगों के दिलोदिमाग में ऐसी बातें गहराई से बिठा देते हैं कि उन्हें यही कार्य करना सबसे सही लगता है और इसे करने के लिए वे अपने प्राणों की बलि देने से भी नहीं चूकते हैं।

नक्सलवाद व आतंकवाद को बढ़ाने में शामिल होने वाले लोग यदि सकारात्मक दिशा की ओर बढ़ चलें, तो निश्चित रूप से वे कुछ उल्लेखनीय कर जाएँगे, लेकिन इन लोगों के मन में मानवजाति के प्रति विद्रोह का बीजारोपण इतनी गहराई से किया जाता है, नकारात्मकता की विषबेल इनके मनों में इस कदर फैलाई जाती है कि वे दूसरों का अंत करने में तनिक भी संकोच नहीं करते बल्कि ऐसा करके वे और अधिक प्रसन्न होते हैं। आतंकवाद फैलाने वाले लोग विध्वंसक प्रकृति के होते हैं, वे सृजन की बात कभी भी नहीं सोच सकते। विध्वंस करना आसान होता है, लेकिन सृजन करना उतना ही कठिन होता है

और इस सृजन का दायित्व वे ही युवा उठा पाते हैं, जिनकी प्रतिभा सकारात्मक होती है।

युवा पीढ़ी के लिए सकारात्मकता उस अमृत के समान है, जो उन्हें उनके कार्यों के द्वारा अमर कर देती है और नकारात्मकता उस विष के समान है, जो समाज में उनके अपयश को फैलाती है और धीरे-धीरे उनका भी अंत कर देती है।

हालांकि युवा पीढ़ी की एक कमजोरी- उनमें मौजूद उतावलापन है। इसके लिए उन्हें यह समझने की जरूरत है कि किसी बड़े काम को करने के लिए समय भी उतना ही लगता है। जिस तरह यदि किसी मकान की हर मंजिल पर धैर्यपूर्वक काम नहीं किया गया, तो वह इमारत टिकाऊ नहीं बनेगी, ठीक उसी तरह जल्दबाजी से कोई भी कार्य ठीक तरह से पूर्ण नहीं होता, ऐसे कार्य में कुशलता प्रदर्शित नहीं होती।

हमारी युवा पीढ़ी एक तथ्य को सदैव विस्मृत कर देती है कि हमसे पहले वाली पीढ़ी के लोगों ने ही कुछ करने की कोशिश की होगी। युवा पीढ़ी का यह दायित्व है कि वह अपने बड़े-बुजुर्गों के प्रयासों को बेकार समझने की भूल न करे और उनसे हर संभव कुछ सीखने का प्रयास करें। कुछ नया वे तभी कर पाएँगे, जब वे अपनी पुरानी गलतियों या सफलताओं को देखकर नई जगहों पर कदम रखेंगे। इसलिए बड़े-बुजुर्गों की उपलब्धियों को नकारकर अपनी ऊर्जा फिर से उसी काम में उसी तरह से खर्च करना उचित नहीं।

लोगों के अनुभव मूल्यवान होते हैं, इसलिए उनसे सीखना चाहिए, उनसे सबक लेना चाहिए। नए विचारों का सृजन तभी किया जा सकता है, जब पुराने अनुभव से सीखा जाए और उसका गहन विश्लेषण किया जाए। सीखने की मानसिकता रहने पर ही युवा कुछ नया कर सकते हैं। इसलिए उन्हें अतिआत्मविश्वास से बचना चाहिए और पुरानी उपलब्धियों को खुले दिल से कूबूलना और आत्मसात करना चाहिए।

यदि ऐसा संभव हो सका, तो निश्चित ही हमारी नई पीढ़ी कुछ नया कर सकती है व कई नई उपलब्धियाँ अपने खाते में जोड़ सकती है। युवाओं के पास जो ऊर्जा है, जो सकारात्मक व सृजनात्मक सोच है, जो प्रबल इच्छाशक्ति है, उसके माध्यम से वे अपने देश को एक नयी ऊँचाई पर ले जा सकते हैं। आज उसी दिशा में एक प्रयास करने की जरूरत है।

• • •

भगवान बुद्ध अनाथपिंडक के जैतवन में ग्रामवासियों को उपदेश दे रहे थे। शिष्य अनाथपिंडक भी समीप ही बैठा धर्मचर्चा का लाभ ले रहा था। तभी सामने से महाकाश्यप मौद्गलायन, सारिपुत्र और देवदत्त आदि आते दिखाई पड़े। उन्हें देखते ही भगवान बुद्ध बोले- वत्स! उठो यह ब्राह्मण मंडली आ रही है। उनके लिए योग्य आसन इत्यादि का प्रबंध करो।

अनाथपिंडक ने आयुष्मानों की ओर दृष्टि दौड़ाई और फिर साश्चर्य कहा- भगवन्! संभवतः आप इन्हें जानते नहीं। ब्राह्मण तो इनमें से कोई एक ही है, शेष कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य तो कोई अस्पृश्य भी हैं। गौतम बुद्ध अनाथपिंडक के वचन सुनकर हँसे और बोले- तात्! जाति- जन्म से नहीं, गुण-कर्म-स्वभाव से पहचानी जाती है। श्रेष्ठ, रागरहित, धर्मपरायण, संयमी और सेवाभावी होने के कारण ही इन्हें मैंने ब्राह्मण कहा है। ऐसे पुरुष को तुम भी निश्चय ही ब्राह्मण मानो क्योंकि जन्म से तो सभी शूद्र ही होते हैं।

युग गीता - 244

दंभी, अभिमानी, क्रोधी व कठोर होते हैं आसुरी व्यक्तित्व

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक सोलहवें अध्याय की दूसरी किश्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के तीसरे श्लोक की व्याया इससे पूर्व की किश्त में प्रस्तुत की गई थी। इस अध्याय के पहले, दूसरे एवं तीसरे श्लोक में श्रीभगवान् दैवी प्रकृति से युक्त व्यक्तियों के लक्षणों का वर्णन करते हैं। अभय, सत्य, अन्तःकरण की शुद्धता, ज्ञान के लिए योग में दृढ़ स्थिति, दान, दया, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, आर्जव, अहिंसा, अक्रोध, सत्य, शान्ति एवं करुणा जैसे गुणों को प्रथम एवं द्वितीय श्लोकों में बता देने के बाद भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि- हे भरतवंशी अर्जुन! तेज, क्षमा, धैर्य, शुचि, अद्रोह, मान की चाहत का मन में न होना-ये सभी गुण भी दैवीय संपदा से युक्त महापुरुषों की पहचान हैं। सहज स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति अहर्निश तप, स्वाध्याय, सत्य जैसे गुणों में लीन हो, जिसके भीतर वाणी व कर्म की सरलता, अहिंसा, करुणा जैसे लक्षण सदाविराजमान हों, उसके मुखमंडल पर तप का तेज दैदीप्यमान हो ही जाता है। तेज के गुण के बाद श्रीभगवान् क्षमा को भी दैवीय लक्षणों में गिनते हैं। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति के प्रति भी जिसने उनके विरुद्ध कोई अपराध किया हो-उसके प्रति उनके मन में कोई आक्रोश या प्रतिशोध का भाव नहीं होता वरन् वे तब भी उनके भले के लिए ही सोचते अथवा प्रयत्न करते हैं। ये भाव, क्षमा का भाव है। तेज व क्षमा के बाद योगेश्वर कृष्ण, धैर्य व धृति को अगला दैवीय गुण बताते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन में विपत्ति, दुःख या कष्ट आने पर तनिक भी विचलित नहीं होते वरन् स्थिरचित्त रहते हैं। धृति का लक्षण भी दैवीय संपदा का ही प्रतीक है। तेज, क्षमा, धैर्य के अतिरिक्त श्रीभगवान् शरीर, मन व विचारों की शुद्धता, शुचिता, अपने साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले के प्रति जरा भी द्वेष या शत्रुता के भाव के ना होने, मन में मान की आकांक्षा न होने के गुण को भी दैवीय लक्षणों में गिनाते हैं। इस प्रकार इस अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में श्रीभगवान् दैवीय संपदा से युक्त महापुरुषों का वर्णन प्रस्तुत करते हैं।]

इतना कह चुकने के बाद श्रीभगवान् कहते हैं कि-

दभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सपदमासुरीम्॥4॥

शब्द विग्रह- दभः, दर्पः, अभिमानः, च, क्रोधः, पारुष्यम्, एव, च, अज्ञानम्, च, अभिजातस्य, पार्थ, सपदम्, आसु रीम्॥4॥

शब्दार्थ- हे पार्थ! (पार्थ), दभ, (दभः) घमण्ड (दर्पः), और (च), अभिमान (अभिमानः), तथा (च), क्रोध (क्रोधः), कठोरता (पारुष्यम्), और (च), अज्ञान (अज्ञानम्), भी (ये सब)(एव), आसुरी (आसुरीम्), सपदा को (सपदम्), लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं (अभिजातस्य)।

अर्थात् हे पार्थ! दभ करना, दर्प करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोर होना, ये सभी आसुरी सपदा से युक्त मनुष्य के लक्षण हैं। दभ का अर्थ है जो हम नहीं हैं, वैसा स्वयं को दिखाने का प्रयत्न करना। जो हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है, उस चेहरे को प्रकट करने का प्रयास करना दभ कहलाता है। नकली चेहरा दिखाने की कोशिश में व्यक्ति दंभ ही कर बैठता है। चंगेज खाँ के जीवन का एक घटनाक्रम आता है। उसे दूसरों को आतंकित करने में, डराने-धमकाने में बहुत आनंद आता था। यदि दूसरे लोग दुःख से चीखते थे, चिल्लाते थे तो वह बहुत खुशी महसूस करता था।

एक बार किसी ने उससे कहा कि तुम सबको भयभीत कर सकते हो परन्तु किसी सहृदय व्यक्ति को, संत को भयभीत कर पाना तुहारे लिए संभव नहीं है। यह बात चंगेज खाँ को गहरी चुभ गई। उसे यह सहन नहीं हुआ कि इस विश्व में कोई ऐसा भी हो सकता है कि

उसे चंगेज खाँ से डर न लगे। उसने एक संत को पकड़ कर बुलाया और साथ ही कई निर्दोष व्यक्तियों को भी पकड़ कर के बुला लिया। उसने संत को सामने खड़ा करके निर्दोष लोगों को एक-एक करके मौत के घाट उतारना आरंभ किया। ऐसा करते-करते वह संत को भी देखता जाता।

संत ने उसका हाथ पकड़ कर उससे पूछा कि- ये क्या कर रहा है? चंगेज खाँ क्रोधित होते हुए बोला कि- तेरी हिमत कैसे हुई मेरा हाथ पकड़ने की। क्या तू मुझसे डरता नहीं है, क्या तू ये नहीं जानता कि मैं कौन हूँ। वो संत बोले कि- मै जानता हूँ कि तू कौन है? चंगेज खाँ ने पलट कर पूछा कि- क्या तू जानता है कि मेरी कीमत कितनी है? उसके स्वरों में दंभ छलक रहा था। संत बोले कि- हाँ! मुझे पता है कि तेरी कीमत कितनी है? चंगेज खाँ बोला- कितनी? संत बोले- पचास रुपये। चंगेज खाँ के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह बोल- पचास रुपये। बस! अरे-पचास रुपये तो मेरे कुर्ते की कीमत है। संत बोले- चंगेज खाँ! वो कीमत तेरे कुर्ते की ही बतायी है। तेरी अपनी कीमत तो कुछ नहीं है। दंभ के बोझ में तू इंसानियत की कीमत भूला कर बैठा है। इसलिए तेरे व्यक्तित्व का मूल्य तो शून्य ही रह गया है।

दंभ को पहला आसुरी लक्षण बताने के बाद श्रीभगवान् बोले कि दंभ के बाद दूसरा लक्षण घमंड है। दंभ व्यक्ति को उसका होने लगता है जो उसके पास नहीं है, जबकि अभिमान या घमंड उसका होता है जो उसके पास है। जैसे कोई पद के अभिमान में चूर हो जाता है तो कोई पैसे के घमंड से तना दिखता है। किसी को प्रतिष्ठा का अभिमान होता है तो कोई अपनी सुन्दरता के घमंड में मदहोश हो जाता है। अंततः ये सारे ही घमंड एक न एक दिन, व्यक्ति को विनाश की कगार पर ला करके ही छोड़ते हैं।

पुराणों में आयान आता है कि भगवान शिव, नन्दीश्वर के साथ बैठे हुए थे कि एक जोर की आवाज सुनाई पड़ी। नन्दीश्वर ने भगवान शिव से पूछा कि भगवन! ये भयंकर शब्द कैसा था? भगवान शिव बोले- रावण पैदा हुआ है। भगवान का वाक्य भी समाप्त नहीं हुआ था कि एक और भयंकर आवाज हुई। नन्दीश्वर ने पुनः प्रश्न भरी निगाहों से भगवान शिव को देखा तो वे बोले- रावण मारा गया नन्दीश्वर! जब त्रिलोक को जीतने वाले रावण, नवग्रहों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने वाले दशानन का इस धरती पर आना व जाना क्षण भर की घटना बनकर रह जाता है तो अन्य किसी का अभिमान कहाँ टिक सकता है। इसीलिए भगवान दंभ को व अभिमान को आसुरी लक्षण बताते हैं।

इसके बाद श्रीभगवान् कहते हैं कि क्रोधी और कठोर हृदय वाले लोग भी आसुरी स्वभाव के ही होते हैं। सच ये ही है कि ये दोनों एक दूसरे से अविच्छिन्न हैं। जिसके मन में क्रोध है, वाणी में क्रोध है उसका हृदय निर्मल या करुण कहाँ होगा? उसका हृदय तो कठोर ही होगा। कहते हैं कि तैमूर लंग को जब नींद नहीं आती थी तो वो हाथियों को पहाड़ी से नीचे धक्का दिलवा कर गिरवा देता था और जब वे दर्द से चिंघाड़ते थे तो उसे उनकी वो करुण पुकार सुनकर बहुत आनंद आता था। ऐसे क्रोधी, निर्मम व कठोर हृदय वालों को भी श्रीभगवान् आसुरी स्वभाव से ही युक्त बताते हैं। इन सब लक्षणों के बाद श्रीभगवान् कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति भी आसुरी लक्षणों से ही युक्त है। सही बात है। जो अज्ञानी है वही दंभ, पाखंड, घमंड, क्रोध, कठोरता इत्यादि लक्षणों से युक्त रह सकता है। दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति में ऐसे अवगुणों के होने की तनिक भी संभावना नहीं होती। ये सारे लक्षण एक आसुरी व्यक्ति के लक्षण है। • • •

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतानि कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥

(अथर्व0 6/1/6)

अर्थात् हे पुरुष! तुहारी उर्ध्वगति हो, अधोगति न हो। मैं तुहें जीवनीशक्ति और बलवर्धक औषधियाँ देता हूँ। इससे तुम इस रथरूप शरीर पर आरूढ़ होकर जरारहित रहते हुए इस जीवन विद्या को बतलाना।

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

अजूबे पेड़ों का संसार

इस संसार में लगभग साठ हजार प्रकार के पेड़ हैं, जिनमें कुछ ऐसे अद्भुत पेड़ हैं, जो सामान्य से हटकर कुछ अजूबापन लिए हुए हैं। ये दर्शकों के लिए कौतुक का विषय तो बनते हैं, साथ ही उन्हें रोमांचित भी करते हैं। प्रस्तुत है ऐसे अजूबे पेड़ों का संसार, जो विश्व के भिन्न-भिन्न कोनों में विस्तार लिए हुए है।

बाओबाब वृक्ष मेडागास्कर, अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला एक बड़ा ही विचित्र सा पेड़ है, जो 98 फीट तक की ऊँचाई और 36 फीट तक का व्यास लिए हुए होता है। इसके मोटे एवं लबे तने में कोई टहनी या पत्ते नहीं होते, बस इसके शीर्ष के ऊपरी भाग में कुछ पत्तेदार, गुच्छेदार मोटी एवं छोटी शाखाऐं होती हैं। इसके पत्ते और फल खाने योग्य होते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में कुछ बाओबाब पेड़ तो ऐसे भी हैं, जिनके मोटे तनों को अंदर से खोखला कर इनमें जेल की कोठरियाँ बनायी गयी हैं, जिनमें कैदियों को जेल भेजने से पहले की हिरासती अवस्था में अस्थायी रूप से रखा जाता है। ऑस्ट्रेलिया में एक बाओबाब पेड़ तो 1500 वर्ष पुराना है, जो पर्यटकों के लिए कौतुक का विषय रहता है तथा इसको छूना मना रहता है, तब भी दर्शक इसको पास से देखने व अंदर झाँकने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते।

ड्रैगन ब्लड पेड़ यमन इलाके का एक विशाल पेड़ है। लगभग 50 फीट ऊँचे इस पेड़ का तना बिना किसी टहनी के होता है, जिसके शीर्ष पर टहनियाँ गुँथकर छतरी का रूप लेती हैं, जो पत्तों से आच्छादित होती हैं, जिसमें बेरीनुमा फल उगते हैं। इस तरह से यह ऊपर से छतरी के आकार का होता है। यह विशाल पेड़ बहुत गुणकारी होता है। इसके फलों को खाया ाी जा सकता है।

इस विशाल पेड़ के तने पर घाव करने से लाल रंग का रस टपकता है, जिसे औषधियों, रंग-रोगन एवं गोंद बनाने में उपयोग किया जाता है। कभी सदियों तक इस क्षेत्र में इसका उपयोग मृत शरीर को ममी के रूप में संरक्षित रखने के लिए किया जाता था। इस पेड़ को सोकोट्रा टापू का एक प्रतिष्ठित पेड़ माना जाता है। स्थानीय किवदंतियों में यह एक रहस्यमयी एवं पौराणिक पृष्ठभूमि रखता है। यहाँ के टापुओं के निवासियों में यह धारणा है कि जब ड्रैगन मरता है, तो वह ड्रैगन ब्लड पेड़ बन जाता है। ऐसे में लोककथाओं में ये पेड़ जीवंत फॉसिल के रूप में जाने जाते हैं।

सैंडबॉक्स पेड़ को विश्व का सबसे खतरनाक पेड़ माना जाता है, जो 130 फीट तक ऊँचा हो सकता है और इसका तना शंकु आकार के काँटों से आच्छादित होता है। अतः कोई इस पर चढ़ने का दुस्साहस नहीं कर पाता है। ये काँटे एक प्रकार से इसके सुरक्षा कवच का काम करते हैं। इन काँटों से भी खतरनाक इससे तैयार होने वाले बीज होते हैं।

इसके बीज छोटे कद्दू के आकार के होते हैं और जब ये पक जाते हैं तो ये कठोर हो जाते हैं तथा बम के समान हो जाते हैं। इसका परिपक्व बीज बम की भाँति फूटता है और 150 मील प्रति घण्टे की गति के साथ उड़ते हुए 60 फीट दूर तक जा गिरता है, जो इसकी परिधि में विचरण कर रहे किसी भी जीव-जन्तु व प्राणी के लिए खतरनाक होता है। इतना ही नहीं यह पेड़ विषैला भी होता है। यह पेड़ दक्षिण अमेरिका और अमेजन के वर्षा वनों में पाया जाता है।

रेनबो यूकेलिप्टस इंडोनिशिया, फिलिपीन और पापुआ न्यू गिनीया क्षेत्र में पाया जाने वाला एक गगनचुबी पेड़ है, जो अपनी बहुरंगी छाल के लिए जाना जाता है। इसकी छाल वर्ष भर विभिन्न समय अंतराल पर बदलती रहती है, जिसके कारण इसमें लाल, नीले, बैंगनी, संतरी और अंततः भूरे रंग प्रकट होते रहते हैं, जो इसकी विभिन्न अवस्थायों के द्योतक होते हैं। इसकी छाल के तने के अलग-अलग खंड से झड़ने के कारण पूरा पेड़ विविध रंगों की अदभुत छटा लिए होता है। अपने सौंदर्य के बावजूद इस पेड़ का उपयोग सजावट की बजाए कागज को तैयार करने में किया जाता है।

जैबोटिकबा, ब्राजील में पाया जाने वाला एक अदभुत पेड़ है। इसका फल अत्यंत तरल पदार्थ निकालता है एवं वह न केवल इसकी शाखाओं में बल्कि इसके पूरे तने पर उगता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि जैसे पेड़ तैलीय आँसू बहा रहा हो।

इसके छोटे काले रंग के फल की तुलना अंगूर से की जाती है और इसे पूरा खाया जाता है या फिर इसको कुचलकर इसका रस निकाला जाता है अथवा कुछ स्थानों पर इससे शराब बनाई भी जाती है। इसके अद्भुत काले फल की तरह इसका फूल भी रोएँदार सफेद रंग का होता है। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं तो यह पेड़ वर्ष भर में कई बार फलता-फूलता है।

भारत में पाया जाने वाला कटहल का फल भी कुछ इसी तरह पेड़ की जड़ से लेकर तनों में हर जगह से उगता है। पूरे भारत में इसकी सब्जी चाव से खाई जाती है, हालाँकि इसको काटते समय हाथ में तेल लगाना पड़ता है, क्योंकि इसका दूध चिपचिपाहट लिए होता है। कटहल फल सबसे वजनी फल माना जाता है, जिसका एक फल 55 किलो तक का हो सकता है और पकने पर इसके गूदे का रंग पीला पड़ जाता है, जो स्वाद में मीठा होता है तथा इसे फल की तरह भी खाया जा सकता है। इसका एक पेड़ वर्ष भर में 200 से 500 फल दे सकता है।

बोटल नामक पेड़ नामीबिया में पाया जाता है तथा यह धरती के सबसे घातक पेड़ों में से एक माना जाता है। बोटल के आकार का होने के कारण इसका ऐसा नाम पड़ा है, लेकिन तब भी इसके खतरनाक गुणों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इससे निकलने वाला दूधिया रस अत्यधिक विषैला होता है, जिसे पुराने समय में बुशमैन या स्थानीय आदिवासी तीरों की नोक पर लगाकर शिकार करते थे। इसके फूल बहुत सुंदर होते हैं, जिनका रंग गुलाबी एवं सफेद होता है, जो मध्य में लाल रंग लिए होते हैं।

बबोना पेड़ योशेमिटी नेशनल पार्क, मेरिपोजा, अमेरिका में स्थित एक अद्भुत पेड़ है, जिसके निचले हिस्से से सन् 1881 में सुरंग बनायी गयी थी। कोस्ट रेडवुड की प्रजाति का यह पेड़ अपनी पूर्णावस्था में कभी 2277 फुट ऊँचा था। यहाँ की संस्कृति के संरक्षक उल्लू की आवाज पर इसका नाम रेड इंडियन लोगों ने बबोना रखा था।

दुर्भाग्य से सन् 1969 में भारी बर्फबारी होने के कारण इस वृक्ष का ऊपरी हिस्सा गिर गया था लेकिन इसका शेष बचा हुआ ठूंठ आज भी कई तरह के जीवों, पौधों एवं कीड़ों के लिए आश्रय स्थल बना हुआ है। इसकी सुरंग से होकर यात्रा करना आज भी एक रोमांचक अनुभव होता है।

जीवन का पेड़ विश्व के सबसे रहस्यमयी वृक्षों में से एक है, जो बहरीन के बाहर रेगिस्तानी क्षेत्र में स्थित है और इसे ट्री ऑफ लाइफ कहा जाता है क्योंकि सूखे तपते रेगिस्तान में इसकी हरियाली किसी चमत्कार से कम नहीं लगती। यह राहगीरों के लिए एक शीतल आश्रय स्थल का काम करता है।

इस पेड़ का बॉटनिकल नाम प्रोसोपिस सिनेनेरिया है। इसकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं, लेकिन चारों ओर फैले रेगिस्तान को देखकर आश्चर्य होता है कि यह पानी कहाँ से लेता होगा। यह पेड़ पर्यटकों के लिए एक प्रमुख आकर्षण का केंद्र रहता है। स्थानीय लोगों का तो यहाँ तक मानना है कि यह पेड़ वास्तविक ईडन के बगीचे का हिस्सा था।

इस श्रृंखला में भारत में पाया जाने वाला बरगद का वृक्ष भी किसी अजूबे से कम नहीं है, जिसे विश्व के सबसे विस्तार लिए वृक्षों में से एक माना जाता है। फलों की दृष्टि से यह जंगली अंजीर की प्रजाति में आता है। इसकी विशेषता इसकी टहनियों एवं जड़ों का उभार कही जा सकती है, जो जमीन में पहुँचने पर फिर नई शाखाओं को जन्म देती है।

अपने वृहदाकार एवं घने आच्छादन के कारण यह गर्मी के मौसम में थके-हारे राहगीरों के लिए एक शीतल आश्रय स्थल के रूप में कार्य आता है। भारत में इसे एक पवित्र पेड़ माना जाता है, जिसके आसपास मंदिरों का निर्माण किया जाता है। यह एक औषधीय गुणों से भरपूर पेड़ है। आश्चर्य नहीं कि अपने गुणों एवं विशेषताओं के आधार पर यह देश का राष्ट्रीय वृक्ष माना गया है।

इस तरह विश्व में पेड़ों का अपना एक अद्भुत संसार है, जिनमें कुछ गुणकारी हैं, तो कुछ हानिकारक, कुछ अपने विचित्र आकार के कारण विस्मित करते हैं, कुछ अपनी अद्भुत विशेषताओं के कारण। जो भी हो, ये सब मिलकर सृष्टि की विविधता की ओर संकेत करते हैं, जिसके कारण सृष्टि का सौंदर्य बरकरार है। • • •

आडंबर त्याग सच्चाई अपनाएं

लोग अपने बारे में सच जानते हैं, अपने व्यक्तित्व की सच्चाई से परिचित होते हैं, लेकिन अपने बारे में सच कहने से कई बार कतराते हैं, अपनी सच्चाई का वो बखान नहीं करना चाहते, अपनी सच्चाई से लोगों को परिचित नहीं कराना चाहते, क्योंकि स्वयं से सबन्धित कोई-कोई सच्चाई इतनी कड़वी होती है कि लोग उसे स्वीकारने से बचते हैं लेकिन जब व्यक्ति अपनी सच्चाई को स्वीकारने लगते हैं, सच्चाई के साथ अपने मन की बात दूसरों से कहने लगते हैं, तो उनके अन्दर गजब का आत्मविश्वास पनपता है।

समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने से सबन्धित किसी भी सच्चाई को स्वीकारना ही नहीं चाहते और सच्चाई को छिपाने के लिए भांति-भांति के आडबर ओढ़ते हैं, झूठ बोलते हैं, कहानियाँ गढ़ते हैं, और इसका परिणाम यह होता है कि इन सबके कारण उसके असली व्यक्तित्व के ऊपर आडबरों के इतने नकाब चढ़ जाते हैं कि वे अपनी वास्तविक पहचान से बहुत दूर हो जाते हैं।

जब भी कोई व्यक्ति अपनी वास्तविकता को छिपाने के लिए झूठ का सहारा लेता है, तो वह एक तरह से अपनी दुर्बलता को प्रदर्शित करता है। झूठ का सहारा लेने वाला कोई भी व्यक्ति साहसी व आत्मविश्वासी नहीं होता बल्कि वह हीनग्रन्थियों से घिरा होता है। जो दूसरों से लाभ प्राप्त करने के लिए उनके साथ छल करता है, उन्हें धोखा देता है, वह दृढ़ व्यक्तित्व का स्वामी नहीं हो सकता क्योंकि जो सशक्त होता है, वीर होता है, साहसी होता है, वह आगे बढ़ने के लिए दूसरों को गिराता नहीं है, वह आगे के लिए दूसरों की राह में कांटें नहीं बोता और न ही दूसरों का शोषण करता है।

जो सच्चा शूरवीर होता है, वह राह पर सच्चाई के साथ आगे बढ़ता है और दूसरों को आगे बढ़ाने में भी वह उनकी मदद करता है। जिस तरह दीपक की लौ में प्रकाश होने के साथ-साथ वह तेज भी होता है कि उसके सपर्क में आने पर आंच का एहसास होता है, उसके ज्यादा नजदीक जाने पर वह जला भी सकती है, क्योंकि उसमें सच्चाई होती है लेकिन यदि दीपक की लौ का चित्र सामने रख दिया जाए, तो उसके माध्यम से न तो प्रकाश फैलेगा और न ही वह तेज होगा, जिसके माध्यम से वह किसी को जला सकेगी, क्योंकि चित्र में सच्चाई नहीं है, वास्तविकता नहीं है, जीवन्तता नहीं है, वह तो प्रतिबिब मात्र है।

इसी तरह जो लोग आडबर करते हैं, वो क्षण भर के लिए किसी का प्रतिबिब तो बन जाते हैं, उसके चित्र की तरह दिख सकते हैं, लेकिन उसकी वास्तविक आभा नहीं फैला सकते। जिस तरह शेर की खाल ओढ़ने वाला व्यक्ति वास्तव में शेर नहीं होता, वह शेर होने का दिखावा तो कर सकता है, लेकिन अन्दर से भयभीत होता है कि कहीं वास्तव में उसके समक्ष असली शेर आ जाए, तो उसका क्या हाल होगा? यही मनःस्थिति आडबर करने वाले व्यक्ति की होती है।

इस संसार में हर व्यक्ति विशेष है, हर व्यक्ति महत्वपूर्ण है, हर व्यक्ति के अन्दर खास तरह की प्रतिभा छिपी हुई है, लेकिन उसने अपने ऊपर आडबरों के इतने आवरण डाल रखे हैं कि उसकी वास्तविक प्रतिभा का इस संसार में कभी अनावरण ही नहीं हो पाता। जिस मार्ग पर चलने से वह अपने स्व तक पहुँच सकता था, उसके विपरीत मार्ग में वह इतना आगे बढ़ चुका होता है कि उसके लिए पुनः विपरीत दिशा में चलना और स्वयं को खोज पाना असंभव लगता है और यही कारण है कि इस संसार में बहुत से लोग अपने जीवन की दिशाधारा से भटके जाते हैं क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की सच्चाई से मुँह मोड़ा है, अपने जीवन की वास्तविकताओं को अस्वीकारा है।

ओढ़े गए आडबर कभी भी जीवन में सुकून और शांति नहीं देते, एक बोझ की तरह वे जीवात्मा पर लदे रहते हैं और अपने भार से उसे दबाते रहते हैं और आडबर ओढ़ने का परिणाम भी हितकारी नहीं होता। इसलिए रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि-

लखि सुवेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

अर्थात् जो वेषधारी ठग हैं, उन्हें भी अच्छा साधु का वेष बनाए हुए देखकर उनके वेष के प्रताप से जग पूजता है, परन्तु एक-न-एक दिन उनका भेद खुल ही जाता है और इस तरह अन्त तक उनका कपट नहीं निभता, जैसे- कालनेमि, रावण और राहु का हाल हुआ।

कालनेमि ने राक्षसराज रावण के कहने पर हनुमान जी का मार्ग रोकने के लिए साधु का वेष तब धारण किया था, जब वे रात्रि में संजीवनी बूटी लाने के लिए हिमालय की ओर जा रहे थे। साधु वेषधारी कालनेमि की रामभक्ति से हनुमान जी बहुत प्रभावित भी हुए, लेकिन जब उन्हें इस सच्चाई का पता चला कि यह साधु वेष धारण किए हुए कालनेमि नामक राक्षस है और उनका मार्ग रोकने हेतु यह कार्य कर रहा है, तो उन्होंने तत्क्षण उसका वध कर दिया।

राक्षसराज रावण ने सीता का अपहरण करने हेतु साधु का वेष तब धारण किया, जब वन में अपनी कुटिया में वो अकेली थीं। तब भिक्षा माँगने हेतु रावण साधु वेष धारण करके उनकी कुटिया में गया। हालांकि उनकी कुटिया के बाहर लक्ष्मण रेखा थी, जिसे उनके देवर लक्ष्मण जी ने खींची थी और उसे किसी भी अवस्था में पार न करने की विनती भी की थी। साधु वेषधारी रावण भी उस रेखा को पार करने में असमर्थ था, इसलिए उसने वह युक्ति निकाली, जिससे सीता स्वयं ही उस रेखा को पार करके बाहर आ जाऐं। इसके लिए उसने बाहर दूर से ही खड़े होकर भिक्षा माँगी और सीता से कहा कि वे उन्हें बाहर आकर भिक्षा दें।

जब सीता ने अपनी विवशता बताई, तब रावण ने अपने को तपस्वी बताकर शाप देने की बात कही, जिससे सीता मन ही मन घबरा गयी और उस लक्ष्मण रेखा को पार करके वे बाहर आ गयीं। जैसे ही सीता उस लक्ष्मण रेखा से बाहर आयीं, वैसे ही रावण अपने असली रूप में आ गया और सीता को अपने पुष्पक विमान में जबरन बिठाकर लंका ले गया। यह सबको ज्ञात है कि उसके इस कपट का दण्ड सपूर्ण राक्षस वंश को अपने प्राण देकर चुकाना पड़ा और इन सबके अंत के बाद उसके जीवन का भी अंत हो गया।

राहु सिंहिका नामक एक राक्षसी का पुत्र था। समुद्र मंथन के उपरान्त जब अमृत बाँटने का क्रम आया, तब भगवान विष्णु ने विश्वमोहिनी का रूप धारण किया। इस रूप के समोहन में आकर जब देव व असुर दोनों ही विश्वमोहिनी के हाथों अमृत का पान करने के लिए तैयार हो गये तो विश्वमोहिनी ने देवों को तो अमृत का पान कराया, लेकिन असुरों को सामान्य द्रव्य का पान कराया। एक असुर राहु ने देव रूप धारण करके जब देवताओं के समूह में मिलकर अमृतपान कर लिया, तो सूर्यदेव व चन्द्रदेव ने विश्वमोहिनी को इस सच से अवगत कराया कि यह देव नहीं बल्कि असुर है, यह राहु है। तब तुरन्त विश्वमोहिनी रूप धरे हुए नारायण ने अपने सुदर्शन चक्र से राहु के सिर को उसके धड़ से अलग कर दिया लेकिन तब तक राहु ने अमृत का पान कर लिया था। अतः राहु दो भागों में विभाजित हो गया, उसके सिर के भाग को राहु और उसके धड़ के भाग को केतु कहा गया और उन्होंने नवग्रहों में भी अपना स्थान पाया।

इस तरह अपनी वास्तविकता को छिपाकर आवरण ओढ़कर, ढोंग व आडबर करके जो कार्य किया जाता है, तुरन्त तो वैसा करना लाभदायक दिखता है, लेकिन उसका परिणाम दुःखद ही होता है। इसलिए व्यक्ति को अपनी सच्चाई नहीं छिपानी चाहिए, आडबरयुक्त जीवन का चयन नहीं करना चाहिए, बल्कि सच्चाई के साथ जीवन जीना चाहिए, क्योंकि ऐसा जीवन ही व्यक्ति को वह आत्मबल प्रदान करता है, जिसके माध्यम से वह अध्यात्म की ओर बढ़ सकता है, आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश पा सकता है।

• • •

महाविद्वान कैयट एक ग्रंथ लिख रहे थे। समय कम था, अतः उन्होंने आजीविका का ध्यान भी भुला दिया और लेखन में तल्लीन हो गए। कैयट की धर्मपत्नी जैसे-तैसे मेहनत-मजदूरी करके परिवार को रूखा-सूखा खिलाने के साधन जुटाती रहीं। कैयट की धर्मपत्नी के समर्पण ने उनके ग्रंथ को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलवाया।

परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-2

अध्यात्म- अंतरंग का परिष्कार

[गतांक से आगे]

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस महत्त्वपूर्ण उद्बोधन में सभी साधकों को संबोधित करते हुए उन्हें यह बताते हैं कि अध्यात्म का सही अर्थ अपनी भावनाओं, चिंतन, दृष्टिकोण एवं अंतरंग का परिष्कार करना है। वे कहते हैं कि पूजा, अर्चना के क्रम में हम जिन क्रियाकलापों को करते हैं, वे क्रियाकलाप भी वस्तुस्थिति में एक महत्त्वपूर्ण भावनात्मक परिवर्धन की ओर इशारा करते हैं।पुष्प अर्पण, चंदन अर्पण, दीप प्रज्जवलन, मिष्ठान्न अर्पण जैसे अनेकों कर्मकाण्डों का उदाहरण देते हुए परमपूज्य गुरुदेव उनकी लौकिक गतिविधियों के पीछे सन्निहित मर्म से श्रोताओं को अवगत कराते हैं। इसके साथ ही वे बताते हैं कि जब हम अध्यात्म के पथ का सही अर्थों में अनुपालन करते हैं तो भगवान की निधि और भगवान का सहयोग हमें किस रूप में प्राप्त होते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

संत और ऋषि का स्तर

मित्रों! जीवात्मा और परमात्मा के एक में शामिल होने के लिए हमको गहराई में प्रवेश करना पड़ेगा और भावना की भूमिका में प्रवेश करना पड़ेगा। चेतना की भूमिका में प्रवेश करना पड़ेगा। भावना की भूमिका में प्रवेश करने की आप में हिमत नहीं थी। आपने अपने बहिरंग क्रियाकलापों को अपने जीवन के लिए काफी मान लिया और आपने यह बात जान ली कि हमने जो कुछ भी शरीर से कर लिया, वह काफी हो गया। जुबान की नोंक से जो जप कर लिया वह काफी हो गया। पुस्तक को हमने पढ़ लिया, वह काफी हो गया। नाक से पानी पी लिया, कान से घण्टी बजने की आवाज को सुन लिया, वह काफी हो गया।

तो मित्रों! मैं आपको बालक कहूँगा, बच्चा कहूँगा और गैरजानकार, नासमझ कहूँगा। क्या आप इन सारे के सारे क्रियाकलापों को यह मानते हैं कि हमारी जीवात्मा का स्तर ऊँचा हो गया और लक्ष्य पूरा हो गया। वह सब हो गया जो संत का होना चाहिए था। एक ऋषि का होना चाहिए था।

मित्रों! संत और ऋषि का स्तर बढ़ाने के लिए आपको अपने अहं को ठीक करना पड़ेगा, सुधारना पड़ेगा। अगर आपका अहं काबू में नहीं आया, तो आपके सारे के सारे कार्य- जैसे एक टांग पर खड़े रहना, पानी में बैठे रहना, धूनी तापते रहना, एकादशी का उपवास करने का मतलब कुछ है ही नहीं, आप सही मान लीजिए। फिर और कोई मतलब नहीं है- अगर आपने दूसरी वाली मंजिल पूरी न की जिस काम के लिए वो किये गये थे। साधन काम के लिए किये जाते हैं। साध्य अलग होता है। साधना का महत्त्व अपने आप में होगा।

मैं यह कैसे कहूँ कि साधना का महत्त्व नहीं है, लेकिन साध्य अलग चीज है। साध्य वह है जो हमारी जीवात्मा के स्तर को सही करता है। ठीक बनाता है और हमारी अहंता का निराकरण करता है। हमारी अहंता का जब निराकरण हो जाता है, तब हम योगी हो जाते हैं। हमने अपने आपको भगवान से जोड़ लिया। जोड़ने के लिए पूजा-पाठ, स्तोत्र की विधियाँ अपने आप में उपयोगी होंगी। कैसे उपयोगी नहीं होंगी? मैं तो सिखाता रहता हूँ कि यह उपयोगी हैं, पर पूर्ण नहीं हैं, समग्र नहीं हैं।

मित्रों! निवेदन मैं यह कर रहा था कि हमको मूलतः चेतना स्तर तक प्रवेश करना पड़ेगा। अगर चेतना के स्तर तक हमारा प्रवेश न हो सका, तो बात कुछ बनने वाली नहीं है। हमारी अहंता को हल्का पड़ना चाहिए और ढीला पड़ना चाहिए। हमारी अहंता कम होनी चाहिए और मैं का भाव हट करके हममें प्रवेश होना चाहिए।

गायत्री मंत्र का न्यूक्लियस

गायत्री मंत्र की सबसे बड़ी विशेषता जो मुझे मालूम पड़ी, सारे का सारा जादू जो उसका मालूम पड़ा, उसकी सारी की सारी दिशायें मालूम पड़ीं, प्रेरणायें मालूम पड़ीं। जो प्रकाश मुझे

गायत्री के अंदर मालूम पड़ा, उससे मैं धन्य हो गया। मुझे यह मालूम पड़ा कि इसका प्राण कहाँ है? इसका न्यूक्लियस कहाँ है? गायत्री का केन्द्र कहाँ है? केन्द्र को मैंने सारे में तलाश किया। जो जर्रा होता है, एटम होता है, हमारे जीवाणु होते हैं। हमारे जीवाणु का एक बीच वाला भाग होता है, जिसको हम ध्रुवकेन्द्र कहते हैं, न्यूक्लियस कहते हैं, नाभिक कहते हैं।

गायत्री का नाभिक कहाँ है? नाभिक को, न्यूक्लियस को तलाश किया तो मुझे यह मालूम हुआ कि "धियो यो नः" जो शब्द है, इसका न्यूक्लियस ही है। मैं नहीं "हम...हम"। हमारा "मैं" जितना ढीला होता चला जाता है, जितना हल्का होता हुआ चला जाता है, हमारी अहंता जितनी कम होती चली जाती है और हमारी व्यापकता जितनी विस्तृत होती चली जाती है- हमारा दायरा बढ़ता हुआ चला जाता है।

मित्रों! हम छोटे से दायरे के लिए नहीं हैं। थोड़े से लोगों के लिए नहीं हैं। हम शरीर तक सीमित नहीं है। हमारे कुटुब के लोगों तक, उनकी खुशहाली तक हमारे स्वार्थ सीमित नहीं हैं। हमारे स्वार्थ सारे विश्व तक व्यापक हो गए हैं। प्रत्येक मानव तक व्यापक हो गये हैं। हमारे स्वार्थ धर्म तक व्यापक हो गये हैं, संस्कृति तक व्यापक हो गये हैं। अध्यात्म तक व्यापक हो गए हैं। आस्तिकवाद तक व्यापक हो गये हैं।

मानवीय पीड़ा हमारी पीड़ा है। मानवीय सुख और शांति हमारी सुख और शांति है। इसलिए हमारे स्वार्थ स्वयं के लिए हैं और हमें अपनी रोजी-रोटी कमानी चाहिए, कपड़ा पहनना चाहिए। यही दर्द, यही इच्छा जब विस्तृत और व्यापक होकर के इतनी असीम हो जाती है कि जो खुराक हमको जरूरी है, वह सबको मिलनी चाहिए। पैसे की जो जरूरत हमको है, वह सबको मिलनी चाहिए और यही विद्या जो हमको जरूरी है, सबको मिलनी चाहिए। यही सुख जो हमको जरूरी है, सबको मिलना चाहिए।

प्रतिध्वनि है भगवान

मित्रों! जब यह भावनाएँ हमारे भीतर आ जाती हैं, तो हम योगी हो जाते हैं और भगवान से जुड़ जाते हैं। भावनाओं की यही प्रतिक्रिया लौट करके हमारे पास आ जाती है और हम भगवान हो जाते हैं। भगवान क्या है? भगवान, मित्रों! प्रतिध्वनि है और प्रतिच्छाया है। भगवान और कुछ नहीं है, वह प्रतिध्वनि और प्रतिच्छाया है। जैसे हमारे विचार होते हैं, जैसी हमारी भावना होती है, उसी की प्रतिक्रिया, प्रतिध्वनि गूँज करके हमारे पास आ जाती है।

भगवान के जवाब ठीक वही होते हैं, जो हमारे जवाब होते हैं। भगवान से जब हम यह कहते हैं कि अमुक चीज चाहिए, अमुक चीज चाहिए। निकालिये, हमें बेटा दीजिए, लाइए हमको पैसा दीजिए। लाइये हमको ये दीजिए, लाइये हमको वो दीजिए। लाइए हमारी नौकरी में तरक्की कराइये। लाइये हमारी बीमारी अच्छी कीजिए। यह सारी की सारी बातें जो हम कहते हैं, ठीक उसी की प्रतिध्वनि इस अंतरिक्ष में से हो करके हमारे पास चली आती हैं और हमसे यह पूछती है कि लाइये, आपके पास पैसा कहाँ है, हमको दीजिए। आपके पास शरीर श्रम कहाँ है, हमको दीजिए। आपके पास नौकरी में तरक्की कहाँ है? नहीं साहब! हमारी नौकरी में तरक्की कराइये। हमको संतान की जरूरत है और वह भगवान की संतान जैसी होनी चाहिए। लाइये हमको संतान दीजिए।

मित्रों! यह कौन कहता है? भगवान कहता है। किससे कहता है? उस माँगने वाले से कहता है। माँगने वाले में जद्दोजहद बराबर बनी रहती है और ऐसी बनी रहती है, जैसी कि दाराशिकोह और उसके भाई में बनी रहती थी। दारा और उसका भाई दोनों ही यही कहते थे कि हमको उम्र चाहिए और राज्य चाहिए। दोनों भाइयों में जद्दोजहद होने लगी और लड़ाई होने लगी। दोनों की लड़ाई में बड़े भाई ने छोटे भाई का सिर कटवा दिया और सिर कटवा करके थाली में रखकर मँगवा लिया।

हम और हमारा भगवान दाराशिकोह और औरंगजेब हैं और दोनों बैठे हैं कि राज्य हमको चाहिए और दौलत हमको चाहिए। हम कहते हैं कि दौलत हमको चाहिए और भगवान कहता है कि तेरी दौलत हमको चाहिए। तेरे पास क्या है, निकाल और हम कहते हैं कि तेरी दौलत कहाँ है, निकाल, दे हमको। भगवान कहता है कि निकाल तेरे पास कहाँ है। हम दोनों अपने-अपने चाकू लिए हुए हैं, तलवार लिए हुए हैं। छुरे लिए हुए बैठे हैं। कब किसका सिर काट डालें और कब किसका खात्मा कर डालें।

प्रतिध्वनि बदले तो प्रतिक्रिया बदले

लेकिन मित्रों! जब यह प्रतिध्वनि, यह प्रतिक्रिया बदल जाती है, उस क्षण जब हम भगवान से यह कहते हैं कि हमारी सारी चीजें तुहारी हैं। हमारा शरीर तुहारा है। हमारी अकल तुहारी है। हमारी भावना तुहारी है और हमारा धन तुहारा है। हमारा सब कुछ तुहारा है। हमारे पास जो कुछ भी है, सब तुहारा है और तुहारे लिए है। यह विचार जिस क्षण हमारे मन में आ जाता है, तो हमारी लड़ाई का मोर्चा बदल जाता है और हमारी लड़ाई के लड़ने वाले शूरवीरों की शकलें बदल जाती हैं। हमारी लड़ाई के लड़ने वाले शूरवीर राम और भरत जैसे हो जाते हैं।

रामचन्द्र ही कहते थे कि भरत गद्दी तेरे लिए है। तुझे लेनी चाहिए। गद्दी पर तुझे बैठना चाहिए। मैं बड़ा हूँ। मैं तो जंगल में अभी रहूँगा। तू छोटा बच्चा, छोटा भाई है और तुझे ही गद्दी पर बैठना चाहिए। तू गद्दी पर बैठ। भरत कहते थे कि आप बड़े भाई और आप पिता के तुल्य हैं, आपको ही गद्दी पर बैठना चाहिए। मैं तो आपका सेवक हूँ, मैं क्यों बैठूँगा। दोनों में खूब बहस हुई। फिर जीता कौन? धर्म जीता और योग जीता और हारा कौन? "मैं" हार गया, "अहं" हार गया। रामचन्द्र जी वनवास को चले गये और भरत जी नंदगाँव में जा करके उसी तरह साधुओं जैसा लिबास पहनकर जमीन पर सोने लगे और राम की तरह वनवासी जीवन जीने लगे। अयोध्या के सिंहासन पर रामजी के खड़ाऊँ रख करके राजपाट चलाने लगे।

मित्रों! यह क्या हो गया? राम और भरत की कथा हम पढ़ते हैं, सुनते हैं। राम और भरत का चित्रकूट में मिलन हम पढ़ते हैं। छाती से छाती मिलाकर जब हम मिलते हैं, तो कितना आनन्द आता है। सारी रामायण एक ओर और राम-भरत का मिलन एक ओर। जब गहराई से इसको पढ़ते हैं तो हमको ऐसा आनन्द आता है और मालूम पड़ता है कि आध्यात्मिकता का सार, रामायण का सारा का सारा सार उसी में रखा है। यह रामायण का न्यूक्लियस वहाँ है, केन्द्र वहाँ है, नाभिक वहाँ है जहाँ राम और भरत छाती से छाती मिलाकर मिलते हैं। ऐसा आनन्द और कहीं नहीं आता।

योग की सच्ची व्याया

बार-बार मन करता है कि रामायण के प्रसंगों को पढ़ना चाहिए। यह क्या हो रहा है? यह मैं योग की व्याया कर रहा हूँ। आप जिस उद्देश्य के लिए, जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यहाँ आए हैं, उस उद्देश्य का नाम है- योग। हमने आपको योग सिखाने के लिए बुलाया है। आपने तो समाज की सेवा करना बता दिया और यज्ञ करना बता दिया। आपने योग करना कहाँ बताया? आप यकीन रखना, मैंने सचमुच योग बताया है। झूठ वाले योग बताने वालों में से मैं नहीं हूँ ताकि मैं आपको तरह-तरह के खेल-खिलौने हथेली पर दे करके यह कहूँ कि देख बेटा, चन्द्रमा मँगा दिया। मुझे लक्ष्मी जी मँगवा दीजिए। अच्छा बेटा! मैं तुझे लक्ष्मी जी दूँगा।

तो गुरुजी! कब देंगे? कल सबेरे दे दूँगा। आज शाम को लक्ष्मी जी को मँगा लूँगा और वह सबेरे ही आ गया, लाइये लक्ष्मी जी दे दीजिए। हाँ बेटे! ले लक्ष्मी जी। लक्ष्मी जी किसकी बनी है? दोनों तरफ हाथी बैठे हैं और बीच में लक्ष्मी जी बैठी हैं। दोनों हाथी लक्ष्मी जी के ऊपर पानी चढ़ा रहे हैं। लक्ष्मी जी कमल के फूल के ऊपर बैठी हैं। ले बेटा, ले जा लक्ष्मी जी को। दो आने की खरीद करके लाये हैं, ले जा।

गुरुजी! ये कैसी लक्ष्मी जी हैं। ये तो बिड़ला के बराबर भी धनवान नहीं बना सकीं और टाटा के बराबर भी नहीं और मफतलाल के बराबर भी नहीं बना सकीं। ये कैसी लक्ष्मी जी हैं? बेटे, जैसे तैने माँगी थी, वैसी लक्ष्मी जी मैंने दे दी। नहीं साहब! हमको असली लक्ष्मी दीजिए और हमको बिरला, टाटा तो बना ही दीजिए। आपने यह क्या दे दिया। बेटे! यह बच्चों का खिलौना है। तू भी तो खिलौना ही माँग रहा था, सो मैंने तेरे हाथ में खिलौना थमा दिया। नहीं गुरुजी! हमको तो योग बता दीजिए। देख बेटा, अभी बताते हैं। नाक बंद कर, खोल, लबी-लबी श्वांस ले, निकाल, बस योग आ गया। नहीं बेटे, यह तो योग नहीं हुआ।

मत्रों! योग ऐसे नहीं बनता है। नाक में कहीं योग रखा है। नहीं साहब। हवा खीचूँगा और निकालूँगा। बिलकुल पागल आदमी है। नाक की हवा में कहाँ है योग? नाक में तो कफ भरा पड़ा है। नहीं साहब! मैं तो नाक से योग करूँगा। बेटे नाक में योग नहीं है। तो फिर कहाँ है? योग, मित्रों! भावनाओं में है। विचारणाओं में है। भावनाओं का और विचारणाओं का परिष्कार करना वास्तव में, असल में यही योग है। आपको जब कभी भी यह बात समझ में आ जाये, चाहे आज आये, चाहे हजारों वर्षों बाद आये।

मनुष्य और भगवान का मिलन है योग

योग का मतलब कभी भी आपको जानना पड़े, समझना पड़े तो एक ही दिशा आपको मालूम पड़ेगी और एक ही बात आपको मालूम पड़ेगी कि योग का अर्थ दो तत्त्वों का जुड़ना है। अर्थात् चेतन तत्त्वों का जुड़ना, एकाकार होना। जड़ चीजों की तो मैं नहीं कहता। जड़ चीजों की तो एक की भी अलग हस्ती बनी रहती है, पर चेतन जब कभी भी मिलेगा, तो वे दोनों एक हो जायेंगे। एक दूसरे में विलय हो जायेंगे। फिर दोनों की हस्ती कभी अलग रह ही नहीं सकती। हाइड्रोजन गैस और ऑक्सीजन गैस जब कभी भी आपस में मिलेंगी, तो पानी बन जायेंगी और दोनों की शकल बदल जायेगी। कुछ और ही बन जाएगी।

मित्रों! मनुष्य और भगवान जब कभी भी मिलेगा, तो मनुष्य, मनुष्य रह ही नहीं सकता। फिर मनुष्य और भगवान दोनों जब मिल जायेंगे तो हम पानी बन जायेंगे। देवता बन जायेंगे और हम संत बन जाएँगे, ब्राह्मण बन जाएँगे। इससे कम में हमारा गुजारा हो ही नहीं सकता। इससे कम हमारी हस्ती रह ही नहीं सकती। भक्त और गवान दो अलग रह ही नहीं सकते।

मित्रों! मैं योग की बात कह रहा हूँ। चेतन चीजों को जब आप मिला देंगे, तो वे फिर किस तरीके से अलग रह जायेंगे। गंगाजल और जमुना जल मिला दीजिए, दोनों एक ही हैसियत के हो गए। क्यों? क्योंकि आपने दोनों को मिला दिया। अब आप अलग कर दीजिए न गंगाजल और जमुना जल को। कहाँ अलग हो सकते हैं। आपने उन्हें मिला जो दिया। अब वे अलग नहीं हो सकते। दोनों एक हो गये। भगवान के साथ जब जीवात्मा मिल जायेगा, तो फिर दोनों एक हो जाएँगे। दो अलग रह ही नहीं सकते। योग करने की शिक्षा इसीलिए मैं आपको दे रहा था।

मनोवृत्ति से तय होते हैं योगी या भोगी

मित्रों! आपको न केवल भावनाओं की दृष्टि से, बल्कि क्रियाओं की दृष्टि से भी असल में योगी होना चाहिए। इसीलिए मैं आपको योगी बनाना चाह रहा हूँ। मेरा असली लक्ष्य आपको योगी बनाना है। योगी बनने के लिए आपको अपनी भूमिका भोगी से हटा देनी पड़ेगी, क्योंकि योगी और भोगी दोनों एक दूसरे की भिन्न दशायें हैं। भागी वह है जो माँगता रहता है और चाहता रहता है। जरूरतमंद बनना चाहता है, मालदार बनना चाहता है और सपन्न बनना चाहता है, अमीर बनना चाहता है। उस आदमी का नाम क्या है?- भोगी है।

भोगी से भिन्न प्रकार का स्तर जो है, वह क्या है? उसका नाम योगी है। योगी भगवान के लिए समर्पित होता है और भोगी भगवान को अपने लिए समर्पित कराना चाहता है। वह भगवान से तरह-तरह की वाहिशें और तरह-तरह की फरमाइशें पेश करता रहता है। भगवान के पास कोई बल है, शक्ति है और ताकत है, सो अपने लिए माँगता रहता है। उसका नाम भोगी है। योगी उस आदमी का नाम है जो माँगता नहीं है, बल्कि भगवान से यह कहता है कि हमारे पास जो चीजें हैं, सो हम आपको सब देंगे। यह चीजें आपकी हैं। बस मूलतः मनोवृत्ति में इतना फर्क है।

मित्रों! वास्तव में एक मनोवृत्ति का नाम योग है और दूसरी मनोवृत्ति का नाम ही भोग है। अन्यथा जिन्दा तो आपको भी रहना पड़ता है और हमको भी रहना पड़ता है। योगी को भी रहना है और संत को भी रहना पड़ता है। अनाज तो आप भी खाते हैं। अनाज तो संत भी खाते हैं। कपड़ा आप भी पहनते हैं। संत छाल पहनता है, कबल पहनता है और मृगछाला पहनता है। शरीर को वह भी ढकता है। शरीर को ढके बिना किसका काम चला है? किसी का भी नहीं चला है। खाये बिना न आपका काम चलता है और न उनका काम चला है।

शरीर निर्वाह की क्रियायें तो मित्रों! एक सी ही होती हैं। क्या योगी की क्या भोगी की। सबको अपना पेट भरना पड़ता है। ठीक है आपने गेहूँ से भर लिया, योगी ने मक्का से भर लिया पर अन्न तो उसको भी लेना पड़ा न। शरीर का निर्वाह करने के लिए सोना आपको पड़ता है और संत को भी सोना पड़ता है। आप पलंग पर सो जाते हैं और वह जमीन पर पत्ते-घास बिछाकर सो जाता है। बात तो एक ही हो गयी न। उनमें और आप में फर्क कहाँ रहा। जीवन निर्वाह करने की क्रिया और जीवनयापन करने में योगी और भोगी में कुछ खास फर्क नहीं होता। विचार करने की शैली में फर्क होता है। सोचने के तरीके में फर्क होता है। आदमी सोचता है कि भगवान का नाम ले करके, पूजा करके वह हमारे वश में आ जायेगा, हमारे काबू में आ जायेगा, बेटे, यह उसका अज्ञान है।

मित्रों! मैं आपसे यह कह रहा था? मैं आपको योगी बना रहा था और यह कह रहा था कि आप अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को कम कर दीजिए और यह करना शुरू कर दीजिए कि हमको हमारा शरीर मिला है तो शरीर का निर्वाह करने के लिए हम परिश्रम करेंगे। अपनी कमाई से ही हम अपना पेट भरेंगे।

यह हमारा ऑटोमेटिक शरीर है। हमको किसी से माँगने की, किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत क्या है। हमको भगवान ने हाथ दिये हैं, कलाइयाँ दी हैं। हम जमीन में लात मारेंगे और पानी निकाल लेंगे। अपनी कलाइयों से मेहनत करेंगे और रोटी खा लेंगे। शरीर निर्वाह के लिए आप के ऊपर यह एक छोटे से बगीचे की जिमेदारी दी है। इसके लिए आपको अपने फर्जों को पूरा करना चाहिए। कुटुब, परिवार जो भी है, उसको शिक्षित बनाना आपका काम है। उसको संस्कारवान बनाना, स्वावलबी बनाना आपका काम है, बस उससे आगे नहीं। उससे आगे जो भी कदम आप उठायेंगे, तो परिवार के साथ अत्याचार कर रहे होंगे। इन लोगों को खुश करने के लिए, उनकी इच्छानुसार चलने के लिए अगर आपने कदम बढ़ाये, तो मित्रों! आपकी दुर्गति होना सुनिश्चित है।

मित्रों! आप सबको खुश नहीं रख सकते। तो फिर किसे खुश करना चाहिए? एक भगवान को खुश करना चाहए और एक अपनी अन्तरात्मा को खुश करना चाहिए। इन दो के अलावा किसी तीसरे को खुश करने की जरूरत नहीं है। आप इन दो को खुश कीजिए, क्योंकि आगे जो आपको राह पार करनी है और अपनी जीवात्मा के सहारे पार करनी है। मिलाना तो इन दोनों को ही है न। दुनिया वालों को नहीं मिलाना है, मित्रों। इसीलिए मैंने आपको योगी बनाने के लिए बुलाया है, ताकि अपने आपको आप भगवान में समर्पित कर दें। उसके लिए क्या करना पड़ेगा? वही जो मैंने आपसे पहले कहा और फिर कहता हुआ चला जाऊँगा कि आप अपने आप की सफाई कीजिए। अपने मन की मलिनताओं की सफाई कीजिए। मन की मलिनताओं की सफाई का मतलब साबुन से साफ करना नहीं है। नेति, धोति और गंगाजी में नहाना नहीं है, वरन् वे कषाय, कल्मष जो आपके ऊपर लोभ के रूप में, मोह के रूप में, वासना-तृष्णाओं के रूप में हावी हो गये हैं, सवार हो गये हैं, आपको उन्हीं की सफाई करनी है, और किसी की सफाई नहीं करनी है।

मित्रों! शरीर के धोने, न धाने से भगवान नाराज नहीं हो सकते। भगवान जी जब कभी भी आपसे नाराज होंगे और जब कभी भी नाखुश होंगे, जब आपके मन के ऊपर मलिनतायें छायी रहेंगी। योग इसी आत्मशोधन का, आत्म परिष्कार का नाम है। मैंने आपको यही सिखाया कि आपको योगी बनना चाहिए और वह योगायास करना चाहिए, जिसमें कि आपकी अहंता, जिसमें आपकी स्वार्थपरता, जिसमें आपके लोभ का निराकरण होता हो, समाधान होता हो। इसके लिए जो कर्मकाण्ड बताये, आत्मशोधन की प्रक्रियायें बतायीं, आत्मविस्तार की प्रक्रियायें बतायीं, वो सारा का सारा योगायास ही है और यह भावनात्मक योग है। आपको इसी को सीखना और जीवन में धारण करना है।

आज की बात समाप्त।

॥ ॐ शान्ति॥

• • •

आचार्य विनोबा भावे के बड़े भाई बालकोबा एक बार क्षयग्रस्त हुए। दोनों फेंफड़े सड़ गए। गाँधी जी ने उनको प्राकृतिक उपचार बताया। अच्छे हो गए तो उन्होंने जीवन लौट आने पर शेष आयु को बापू के आदेश पर खर्च करने का निश्चय किया। गाँधी जी ने उन्हें उरूलीकाँचन का प्राकृतिक चिकित्सालय चलाने के लिए भेज दिया और कहा जिस उपाय से आपके प्राण बचे हैं, उसी पर अन्य लोगों को भी चलाकर उनकी सेवा कीजिए। बालकोबा ने वही किया। जीवन भर प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से लोगों को नया जीवन देने एवं जीवन जीने की कला सिखाने में वे लगे रहे।

विपरीत परिस्थितियों में नूतन संदेश पहुँचाता विश्वविद्यालय

कोरोना वायरस के संक्रमण ने देश ही नहीं अपितु पूरे विश्व की प्रगति पर विगत दिनों गंभीर रूप से रोक लगाई थी परंतु ऐसे में भी जीवन विद्या का आलोक केन्द्र, देव संस्कृति विश्वविद्यालय निरंतर आगे बढ़ने के अपने दायित्व को पूर्ण करता दिखाई पड़ा।

आध्यात्मिक तंत्र हमेशा से बदलाव का स्वागत करने का शिक्षण देता हैं और इस काल में समूची मानव जाति को जीवन को नए तरीके से जीना सीखना होगा। इस कारण ही विश्वविद्यालय की अधिकतम गतिविधियाँ ऑनलाईन माध्यम से चलाई गयीं। भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों की परीक्षाएँ इसी क्रम में ऑनलाइन माध्यम से पूरी की गयीं।

इसी क्रम में विद्यार्थियों के शैक्षणिक और आध्यात्मिक विकास हेतु निरंतर कार्य किया जाता रहा। अनेकों ऑनलाइन वेबिनार, वीडियो उद्बोधन, यूट्यूब चैनल, गूगल मीट इत्यादि का प्रयोग करके आचार्यगण विद्यार्थियों के साथ लॉकडाउन शुरू होने के समय से ही जुड़ चुके थे।

इस उपलब्धि पर गर्व व्यक्त करते हुए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि- ऐसे कठिन काल में सभी आचार्य-आचार्यागणो ने पहले स्वयं ऑनलाइन प्रशिक्षण पा कर विद्यार्थियों तक पाठ्यक्रम एवं जीवन प्रबंधन संबंधित सामग्री पहुँचाने का बेहतरीन कार्य किया हैं। 100 से अधिक लेक्चर वेबसाईट पर और अनेकों लाइव कक्षाएँ फेसबुक एवं यूट्यूब पर विश्वविद्यालय स्टॉफ द्वारा उपलब्ध करवाए हैं। शांतिकुंज और विश्वविद्यालय की डिजिटल मीडिया टीम को मैं इसके लिए बधाई देता हूँ।

कोविड-19 काल में पर्यटन, योग, मनोविज्ञान, कप्यूटर विज्ञान आदि से जुड़े विषयों पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर के वेबिनार आयोजित किए गये। इन ऑनलाइन कार्यक्रमों में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के अलावा हजारों अन्य प्रतिभागियों के भी पंजीयन हुए और उन्हें प्रमाण पत्र भी दिए गये।

योग दिवस के उपलक्ष्य में ञ्चसह्य11श्रद्धभ्द्धड्डद्य फेसबुक पेज पर 15 दिवसीय लाइव प्रशिक्षण भी दिए गये। साथ ही 21 जून, विश्वयोग दिवस के महत्त्वपूर्ण अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक ग्लोबल ई-कॉनक्लेव का आयोजन किया गया जिसमें विश्वस्तरीय याति प्राप्त व्यक्तित्वों ने अपने उद्बोधन दिए। 35 से ज्यादा देशों में प्रसारित किए गए इस ई-कॉनक्लेव की थीम परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त सूत्रों एवं सिद्धान्तों के अनुसार- एकता एवं समन्वय अर्थात् यूनिटी एण्ड सॉलिडेरिटी रखी गयी थी।

इस ऑनलाइन कार्यक्रम में कॉमनवेल्थ देशों की महासचिव बेरोनेस पेट्रीसिया स्कॉटलैण्ड, आयुष मंत्रालय के सचिव डॉ. कोटेचा, पतंजलि विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य बालकृष्ण जी, प्रसिद्ध योगगुरु डॉ. नागेन्द्र जी, पूर्व क्रिकेट खिलाड़ी रुद्र प्रताप सिंह, प्रसिद्ध गायक कैलाश खेर जी जैसे लगभग 55 वक्तागण पधारे और सभी ने विश्वविद्यालय एवम् अखिल विश्व गायत्री परिवार के कार्यों की सराहना भी की।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति ने कॉमनवेल्थ देशों द्वारा आयोजित एक अत्यंत प्रतिष्ठित वेबिनार में मुय वक्ता की भूमिका का निर्वहन किया। इस वेबिनार को कॉमनवेल्थ जुईस काउंसिल द्वारा आयोजित किया गया था, तथा इस वेबिनार का उद्घाटन इंग्लैण्ड के प्रिंस चार्ल्स के उद्बोधन द्वारा किया गया। इस वेबिनार के श्रोताओं में अनेकों देशों के राजदूत एवं मंत्रीगण समिलित थे।

प्रतिकुलपति ने इस वेबिनार में इस विषय पर अपने मत रखे- भारतीय संस्कृति विश्व के एकत्रीकरण में क्या भूमिका निभा सकती है? इसके अतिरिक्त इस वेबिनार में यहूदियों के मुय धर्मगुरु चीफ रबाई, मुस्लिमों के धर्मगुरु प्रो. इब्राहिम मूसा, सिक्खों के गुरु प्रो. जुट्टी जोहल, आर्क बिशप, एवं लंदन के बिशप भी समिलित थे। यह विशेष संगोष्ठी देव संस्कृति विश्वविद्यालय को अंतर्राष्ट्रीय फलक पर पहुँचाने का माध्यम बनी। • • •

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ- उपासना' वर्ष

अपनों से अपनी बात

लोकसेवियों के निमित्त महानता का पथ

पुराणों में समुद्र मंथन का आयान आता है। समुद्र के गर्भ को मथने के उपरान्त, वहाँ से चौदह रत्न निकले और उन चौदहों में भी पहले दो रत्न-विष और मद्य थे। कहने को विष जानलेवा था पर दिखने में उसका आकर्षण कम न था। नीले रंग का-आकर्षक, हलाहल क्षण भर में जीवन का नाश करने की सामर्थ्य रखता था। इसी प्रकार मद्य भी कुछ ऐसा ही रूप-स्वरूप धारण किए हुए था। जिसके मुख से लग जाए, उसे मदमस्त करके छोड़ने का दुर्गुण मद्य की स्वाभाविक विशेषता थी और देव व दानव, दोनों ही उसे पाने के लिए गंभीर रूप से लालायित व आतुर थे।

प्रजापति के लाख समझाने पर भी दैत्य-दानवों ने मद्य का आस्वादन कर ही लिया और उन्मादी मनोदशा को प्राप्त हुए। आज भी वे उसी के कारण पतन-पराभव की स्थिति को अपनाने के लिए विवश दिखते हैं। हलाहल विष को भगवान शिव ने अपने कंठ में धारण न किया होता तो सृष्टि का जो दुर्भाग्यशाली अंत होता, वो भला किससे छुप सकता है?

लोकसेवा के क्षेत्र को भी एक समुद्र मंथन के रूप में समझा जा सकता है। इस क्षेत्र में उतरने वालों को जनसाधारण की श्रद्धा व प्रशंसा का एक रत्न मिलता है और उसे भी एक सपदा के रूप में गिना जा सकता है? परंतु यदि इस सपदा का सदुपयोग लोककल्याण के कार्यों में न किया जा सका, जनसाधारण की उमड़ी श्रद्धा को दिशा देने से लोकसेवी वंचित रह गए तो ये प्रशंसा भी एक ऐसा आवेश व दंभ से भरा उन्माद उत्पन्न करती है जिसकी तुलना मद्यमान से होने वाले उन्माद से की जा सकती है।

कहने को तो ये रत्न है परंतु विवेक बोध न रहे तो ये उद्दण्डता, उच्छृंखलता, उन्माद के पथ का पालन करते हुए मनुष्य को, विनाश के रसातल में गिरा कर छोड़ती है। यश पाने का, प्रशंसा लूटने का उन्माद यदि गलती से हमारे चिंतन में आ बैठता है तो अहंकार पनपता है, चिंतन, चरित्र, व्यवहार में पतन के छिद्र खुलते हैं और अंत ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण होता है-जिसे देखकर, पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ करते नहीं बनता है।

लोकसेवियों के पतन का कारण मुय रूप से तीन दुष्प्रवृत्तियाँ बनती हैं- उन्हें वासना, तृष्णा और अहंता के नाम से पुकारा जा सकता है। वासना व तृष्णा की दौड़ तो व्यक्ति को थकाती है पर अहंता का मुँह तो सुरसा के मुँह से भी ज्यादा विशाल है जो व्यक्ति का सर्वनाश करे बिना चैन से नहीं बैठता। अहंता के भूखे को दुनिया जहान की सारी प्रशंसा, सारा यश, सारा मान-समान, सारा बड़प्पन, सारे अधिकार, सारी सत्ता अपने ही हाथों में देखने का पागलपन सवार हो जाता है।

इस संसार के इतिहास में सबसे ज्यादा विग्रह-अपराध इसी अहंता के कारण हुए हैं। द्रौपदी के व्यंग्य ने दुर्योधन की अहंता को न छुआ होता तो संभवतया महाभारत न हुआ होता और उसके सिर पर 'सूच्यग्रम् न दास्यामि विना युद्धेन् केशव' जैसी सनक सवार न हुयी होती। रावण से लेकर कंस को उनकी अहंता ही ले डूबी।

दिखने में ये कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं लगती पर अहंता ही है जो लोगों को आपस में लड़वाती है, प्रतिशोध से लेकर, उत्पीड़न के कारणों को खड़ा करती है। चाहे कथा रावण की हो या हिरण्यकशिपु की, सिकंदर की हो या तैमूरलंग की, चंगेज खाँ की हो या शिशुपाल की- इन सबके अंत का कारण उनके सिर पर सवार अहंता ही रही। जो अहंता इन चक्रवर्ती सम्राटों को ले डूबी, उसे लोकसेवियों के व्यक्तित्व में सेंध लगाते कितनी देर लगती है? ये अकेली दुष्प्रवृत्ति ही ऐसी घातक है, जिससे सदा व निरंतर सावधान रहने की आवश्यकता पड़ती है।

ये बातें लोकसेवियों के जीवन में महत्त्वपूर्ण इसलिए हो जाती हैं क्योंकि पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माता जी द्वारा जो पथ हमारे लिए निर्धारित किया गया है- उसमें श्रेय, समान, प्रशंसा,

श्रद्धा व यश तो स्वाभाविक रूप से हमारे अनुगामी बन जाते हैं। यदि ये श्रद्धा, समान हम पचा न सकें और गलती से मन में ये भाव विकसित हो जाए कि इस सारे श्रद्धा-समान के हम अकेले हकदार हैं तो हम स्वयं का व संगठन का कितना विनाश कर बैठेंगे, उसकी कल्पना मात्र से ही मन सिहर उठता है। ऐसे ही हाथी पागल हो जाए तो महावत पर ही टूट पड़ता है। व्यक्ति का मानसिक संतुलन डगमगा जाए तो वह अपने-पराए का भेद भूल बैठता है।

ऐसे ही लोकेषणा- यदि लोकसेवी के चिंतन पर चढ़ बैठे तो वह अपने को बड़ा मानने, अपने गुरु को छोटा मानने, अपने साथी-सहयोगियों को निकृष्ट मानने का अनर्गल प्रयत्न करने में उद्यत हो जाता है ताकि येन-केन-प्रकारेण स्वयं की विशिष्टता सिद्ध की जा सके। यदि सभी लोग समान हैं तो वर्चस्व को स्थापित कैसे किया जा सकेगा और इसीलिए उसे अपने साथी-सहयोगियों का नुकसान करने का जुनून चढ़ जाता है ताकि वो उन सबको साफ कर महान होने की शेखी बघार सके।

लोकसेवा के क्षेत्र के अतिरिक्त भी यदि दृष्टि दौड़ाएँ तो स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि जब-जब बड़े संगठन, विनाश के परिणाम को प्राप्त हुए हैं तो उसके पीछे मात्र उनकी महत्त्वाकांक्षा ही जिमेवार रही है। बड़े-बड़े धार्मिक संगठन भी अहंकार की लड़ाई के हाथ चढ़ गए व अन्तर्कलह ने उनका विघटन इस सीमा तक कर दिया कि वे अपना अस्तित्व ही गँवा बैठे। इन सबकी दुर्दशा को देख कर लोकसेवियों द्वारा इस सत्य को सहजता से स्वीकार किया जा सकता है कि लोकसेवियों के लिए सबसे ज्यादा त्याज्य दुष्प्रवृत्ति यदि कोई है तो वो ये अहमन्यता-अहंता लोकेषणा ही है, जिसका समय रहते व्यक्तित्व से निष्कासन न किया जाए तो ये व्यक्ति व संस्था, दोनों का अंत करके छोड़ती है।

हमें लोकसेवी के रूप में मिलने वाली प्रशंसा वस्तुतया पूज्य गुरुदेव का, वंदनीया माता जी का, उनके व्यक्तित्व, कृत्तित्व का, उनके तप-पुण्य का समान है। अच्छे कर्मों को प्रश्रय मिले- इसलिए इस श्रद्धा के प्रकटीकरण की परंपरा रही है पर उसे स्वयं के निमित्त मान बैठना किसी अपराध से कम करके नहीं आका जा सकता है। उसे व्यक्तिगत योग्यता का फल मानने से अहंकार रूपी असुर धीरे-धीरे हमारी विचारधारा का अंग बन बैठता है और मिल रही प्रशंसा को हम गुरुकृपा के स्थान पर अपना अधिकार मान बैठने की भूल कर बैठते हैं। यथोचित प्रशंसा न मिले, भीड़ कम जुटे, तालियाँ कम बजें, मालाएँ कम चढ़ें तो हमें अच्छा नहीं लगता। यदि भूल से ऐसा कुछ हमारे व्यक्तित्व का अंग बन चला हो तो इन दुष्प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व से विदा कर देने का यही सही समय है।

यश की लोलुपता, अधिकारों की अहंता, योग्यता का छद्म अहंकार किसी के छुपाए नहीं छुपते। लाश को मालाओं से ढँक भी दिया जाए तो उससे दुर्गंध को छुपा पाना संभव नहीं होता। एक न एक दिन व्यक्तित्व में पल रही ये दुर्गंध भी बाहर के आडंबर को तोड़ कर अपना मार्ग निकाल ही लेती है। धीरे-धीरे ऐसे लोग साथियों का प्रेम खोते हैं व सहयोगियों की प्रशंसा से वंचित होते हैं। पद-अधिकार के भय से प्रारंभ में भले ही कोई कुछ न कहे पर हृदय में मिलने वाला प्रेम व समान उनको कभी प्राप्त नहीं हो पाते हैं और फिर बड़प्पन सिद्ध करने का चस्का चल पड़ता है तो व्यक्ति धन, सौंदर्य, पद के क्षेत्र में अपने को बड़ा सिद्ध करना चाहता है। मन में उसके ये भाव उमड़ते हैं कि लोग इसे देखें, उसकी प्रशंसा करें फिर इसको पाने के लिए ऐसे आचरण का पालन करना पड़ता है, जिसे किसी भी दृष्टि से सही नहीं ठहराया जा सकता है। धीरे-धीरे ऐसा आचरण आंतरिक पतन का तो निमित्त बनता है-साथ ही संस्था व संगठन की प्रामाणिकता पर भी बेढब दाग लगा कर छोड़ता है।

इन सब कुप्रयोजनों के पीछे अहंता नामक आसुरी शक्ति ही जिमेवार है, जिसके बहकावे में आकर लोकसेवी कुछ ऐसा कर बैठते हैं जो उन्हें कभी नहीं करने की आवश्यकता थी। भीड़ तो सड़क पर मजमा दिखाने वालों को देखने के लिए भी एकत्रित हो जाती है पर उससे कुछ बनता नहीं है। न व्यक्तित्व का परिष्कार होता है और न लोकमंगल का कार्य ही हो पाता है। लोकेषणा भी ऐसे ही पतन-पराभव का कारण बनती है व

लोकउपहास का भी मार्ग प्रशस्त करती है। मुकुट पहन लेने से कोई राजा नहीं बन जाता और हाथ में कमंडलु ले कर चलने से किसी की गणना ऋषियों में नहीं हो जाती। लोकसेवी को इस विज्ञापनबाजी से सदा बचकर चलने की आवश्यकता है। यश-लिप्सा की चाहत मृगतृष्णा की तरह से है जो अपने पीछे लोगों को बेइंतहा दौड़ाती है और अंत में दुर्दशा के अतिरिक्त कुछ हासिल नहीं कराती। इस ओर जाने वाले, लोकेषणा का मुँह ताकने वाले दुर्भाग्य को ही प्राप्त होते हैं।

इसलिए लोकसेवियों के लिए, गायत्री परिजनों के लिए यही श्रेयस्कर है कि वे सच्चे मन से इस अहमन्यता का त्याग कर दें। पद-पैसे की दौड़ होती तो हम भौतिक जगत में क्या बुरे थे? सेवा का पथ हमने चुना है तो इन दूषित वृत्तियों को हलाहल विष की तरह ठुकरा देना ही श्रेय है। दूरदर्शिता इसी में है कि हम विनम्रता अपनाऐं। दूसरों को आगे रखें-स्वयं कार्य करने में विश्वास रखें। लोकेषणा से दूर रहें। मिल रही प्रशंसा-श्रद्धा को गुरुकृपा मानें और अपना अधिकाधिक चिंतन आत्म-परिष्कार व लोक-कल्याण के कार्य में लगाऐं। ये पथ ही महानता का पथ है। इस पर बड़प्पन का झूठा अहंकार नहीं वरन् अच्छे कार्य करने का आत्मसंतोष मिलता है।

• • •

देव, दानव और मनुष्य परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते और धरती को खून से लाल करते रहते। दुःखी होकर धरती माँ प्रजापति के पास पहुँचीं और उनसे अपनी दुःख भरी गाथा कह सुनायी। पुत्रों का रक्त बहते देख माँ का दुःखी होना स्वाभाविक था। प्रजापति ने तीनों को बुलाया और बोले- इस प्रकार लड़ते-झगड़ते रहने से तुम सृष्टि को नरक बना दोगे और स्वयं भी नष्ट हो जाओगे। तीनों सिर झुकाए खड़े थे। उन्होंने प्रजापति से पूछा- पितामह! कोई ऐसी शिक्षा दीजिए जिस पर चलते हुए हम कलह से बचें और शांति प्राप्त करें।

पितामह गंभीर हुए और उन्होंने पूरे मनोयोग से शांति की शिक्षा देते हुए एक बीजमंत्र बोला- 'द'। देव, दानव और मनुष्य गंभीरतापूर्वक उसका अर्थ समझने और व्याया करने में लग गए। उनके विमर्श को भंग करते हुए प्रजापति ने उनसे पूछा- हमारी सूत्रशिक्षा का क्या अर्थ समझे? देवता बोले- 'द' अर्थात् दान। जिसके पास सुख-साधन मौजूद हैं, उनका उपयोग अपने लिए मात्र न करते हुए अभावग्रस्तों को देकर आत्मिक आनंद प्राप्त करना चाहिए।

पितामह ने वही प्रश्न मनुष्यों से पूछा तो वे भी बोले- 'द' अर्थात् दमन। अंतःकरण में वासना और तृष्णा के जो तूफान उठते हैं, उनका दमन करना, षडरिपुओं को परास्त करना- इसी में मनुष्य जीवन का उद्देश्य सार्थक समझ में आता है। इसी क्रम में असुर बोले- 'द' अर्थात् दया। दुष्टता निर्दयी करते हैं। जिसे दूसरों के कष्ट अपने कष्टों के समान चुभेंगे, वह किसी को सताने की असुरता से बचेगा।

पितामह ने स्वीकृति में सिर हिलाया और बोले- यही मेरी शिक्षा का सारांश है जिसे तुमने ठीक समझा है। अपने दोषों को ढूँढने, समझने और उन्हें सुधारने का प्रयत्न अनवरत करते रहो तभी तुम शांतिपूर्वक जीवनयापन कर सकोगे। इस धर्मशिक्षा का सारांश जानते तो सब हैं पर मानने वाले बिरले ही निकलते हैं। यदि इस पर चला जा सके तो आनंदमय जीवन जीने में कोई अड़चन न रहे।

कविता